दो मित्र

विष्णु प्रभाकर



मूल्य : पैंतीस रुपये (Rs. 35.00)
संस्करण : 2009
ISBN : 978-81-7028-350-8
DO MITRA (Children's Stories) by Vishnu Prabhakar
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006
website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : mail@rajpalpublishing.com

दो मित्र

विष्णु प्रभाकर

राजपाल

अनुक्रम

दो मित्र

पूर्वी पंजाब के एक छोटे से कस्बे में दो मित्र रहते थे, मंहदीहसन और भागीरथलाल। मंहदीहसन एक छोटे से जमींदार थे और भागीरथलाल एक स्कूल-मास्टर। मंहदीहसन के बाप जिन्दा थे और हाथ रोककर खर्च करने में विश्वास करते थे। इसके विपरीत मंहदीहसन का हाथ खुला हुआ था। उन्हें जब कभी पैसे की तंगी होती तो वे मित्र का सहारा लेते। होते-होते उन पर सैकड़ों रुपयों का कर्ज़ हो गया। देते भी रहते थे पर हिसाब कभी चुकता नहीं होता था।

और सच पूछो तो हिसाब जैसी कोई चीज़ थी भी नहीं। मंहदीहसन को जब कभी रुपयों की ज़रूरत होती तो माँग लाते, न रुक्का था न तमस्सुक। वचन सब कुछ था। मित्रता भेद नहीं जानती, कागज पत्र भेद डालते हैं। फिर मंहदी और भागीरथ उस भेद को कैसे पास आने देते। दोनों दो शरीर एक प्राण थे। दोनों को शतरंज का शौक था। बाजी लगती तो लग ही जाती। घंटों दोनों सिर पर हाथ रखे सोचा करते, दिन डूब जाता मगर भागीरथ के वजीर को रास्ता नहीं मिलता। मंहदी कभी मुस्कराता, कभी चमककर कहता—अमां, चल भी दो, कहाँ जाएगा भागकर।

—हूँ—भागीरथ जवाब देता—चल कैसे दूँ। तेरा मोहरा बैठा है न ! नाग बनकर डस लेगा, पर बच्चू ! याद रखना वह मात दूँगा कि खेल भूल जाएगा।

मंहदी हँस पड़ता—भूल जाऊँगा तो तुम्हें ही सिखाना होगा।

भागीरथ भी हँस पड़ता और मात पीछे पड़ जाती।

सदा की भाँति एक दिन दोनों दोस्त बैठे खेल रहे थे। शतरंज का खेल शाही होता है। खेलनेवाले भी उसके प्रभाव में आ जाते हैं। मंहदी ने जब एक बार बहुत देर तक चाल नहीं चली तो भागीरथ ने कहा—अरे भई, चलो न चाल। क्या वजीर को पकड़े बैठे हो !

मंहदी ने सोचते हुए जवाब दिया—चलता हूँ। ऐसी भी क्या जल्दी है ?

भागीरथ—जल्दी क्या करेगी, एक घंटा हो चुका है।

मंहदी—आप एक घंटे की बात करते हैं, जनाब, यहाँ एक जिन्दगी गुजर जाती है पर चाल नहीं चली जाती।

भागीरथ—आग लगे ऐसी जिन्दगी में। ऐसे लोग बुद्धू होते हैं।

मंहदी—बुद्धू नहीं जनाब, यह खेल शाही लोगों का है।

भागीरथ—इसमें शाही और बे-शाही की क्या बात है। मैं जानता हूँ कि यह सब अपनी बेवकूफी को छिपाने की चाल है।

इस प्रकार बात बढ़ने लगी पर बाजी नहीं बढ़ी। चाल बहुत धीरे-धीरे चलती रही। हाँ, इस बार मंहदी दबाव में थे तो दूसरी बार भागीरथ दब गए। लगे सोचने और गुनगुनाने। तब मंहदी ने कहा—मियाँ, यह मुशायरा नहीं है, शतरंज का खेल है। चाल चलो !

भागीरथ—चलता हूँ।

मंहदी—चल चुके ! खेलना जानते नहीं, चले खेलने।

भागीरथ—तुम बहुत जानते हो। अभी तो...।

मंहदी—अभी तो क्या ? चाल चलो।

—चाल चलो—झुँझलाकर भागीरथ ने कहा और फीला को उठाकर आठ नम्बर पर रख दिया लेकिन हाथ से छोड़ा नहीं। मंहदी ने देखा तो खुशी से चिल्ला उठा और प्यादे को उठाकर तेजी से बोला...

पर वह एक शब्द भी नहीं बोल पाया था कि भागीरथ ने फीले को उठाकर फिर पहली जगह पर रख दिया। एक बार तो कुछ समझ



नहीं सका कि यह क्या हुआ दूसरे ही क्षण चिल्लाकर बोला–फीला वहीं रख दो।

भागीरथ–क्यों रख दूँ। अभी मैंने चाल चली कहाँ है, मैं तो देख रहा था।

मंहदी–तुमने आठ नम्बर पर फीला नहीं रखा ?

भागीरथ–जी नहीं ! मैंने उसे हाथ से नहीं छोड़ा था।

मंहदी–हाथ से नहीं छोड़ा। हाथ से जन्मभर नहीं छोड़ो तो क्या चाल नहीं मानी जाएगी।

भागीरथ–जी हाँ, नहीं मानी जाएगी।

मंहदी–कैसे नहीं मानी जाएगी। कोई धींगा-मस्ती है। खेल सीखो, रोते क्यों हो ?

भागीरथ–रोते तुम हो। हार रहे थे तो लगे चिल्लाने।

मंहदी–हार तो तुम रहे हो। दूसरे को चकराते हो। खेलना चाहते हो तो मोहरा वहीं रख दो।

भागीरथ–नहीं रखता। धमकी क्यों देते हो ? जमींदार हो तो क्या मार डालोगे।

मंहदी–हाँ, मार डालूँगा। तुमने समझा क्या है ? मक्कारी करते हो।

यह सुनना था कि भागीरथ तेज हो उठा। उसने शतरंज को लात मारी और क्रोध में भरकर कहा–क्या बकते हो ? किस बात का जोम है तुम्हें ? क्या समझा है तुमने ? मैं भागीरथ हूँ। तुम्हारा मुँह तक नहीं देखूँगा। तुम्हारे पास तक आकर नहीं फटकूँगा।

और फिर बहुत बकझक करके जिसमें मंहदी ने भी सारा भाग लिया, भागीरथ सीधा अपने घर चला गया। क्रोध से दोनों तिलमिला रहे थे। दोनों अपने आपको भूल चुके थे। भागीरथ बहुत देर तक घर जाकर लेटे रहे फिर जब धीरे-धीरे तेजी कुछ कम हुई तो उन्होंने उठना चाहा तभी मंहदी का पुराना नौकर सामने आकर खड़ा हो गया। वह

कुछ अनमना सा था। बोला—छोटे मालिक ने यह चिट्ठी दी है।

भागीरथ उबल पड़ा—क्या है ?

नौकर—यह चिट्ठी है।

भागीरथ ने चिट्ठी ले ली। उसमें लिखा था—मैंने तुमसे बहुत कर्ज लिया है। अब भी मुझे तुम्हारे कई सौ रुपए देने हैं। उनकी कोई तहरीर नहीं है। शायद तुम सोचते होगे कि मैं कभी इनकार कर सकता हूँ। ठीक भी है, किसी का क्या पता। इसलिए मैं उन रुपये का रुक्का लिखकर भेज रहा हूँ।

चिट्ठी पढ़कर भागीरथ शान्त होने के स्थान पर और भी तेज हो उठे। आँखों से चिनगारियाँ उड़ने लगीं। रुक्के को पढ़ा तक नहीं। टुकड़े-टुकड़े करके बाहर फेंक दिया और चिल्लाकर कहा—मुझे क्या समझा है। मैं इतना नीच हूँ कि रुक्का लिखवाऊँगा। मैं...मैं...अपने को नवाब समझते हैं। लाट साहब ! लेकिन...लेकिन...

नौकर ने यह हालत देखी तो उल्टे पैरों भागा। भागीरथ ने तब और भी चिल्लाकर कहा—कह देना कि मैं इतना नीच नहीं हूँ कि किसी की नीयत पर शक करूँगा।

नौकर ने घर आकर सब कुछ मंहदीहसन से कह दिया। मंहदी ने सुन लिया। क्षण भर कुछ सोचा फिर उसका सारा शरीर काँपने लगा। न जाने क्या हुआ जैसे खड़ा था वैसे ही दौड़ पड़ा। सीधा भागीरथ के घर पहुँचा और उसकी कौली भर ली। भागीरथ एक बार तो तमतमाया, अपने को छुड़ाने की कोशिश की पर फिर पिघल गया।

कुछ देर बाद नौकर ने देखा कि दोनों मित्र फिर शतरंज की बाजी लगाए अट्टहास कर रहे हैं।

सबसे सुन्दर लड़की

समुद्र के किनारे एक गाँव था। उसमें एक कलाकार रहता था। वह दिन भर समुद्र की लहरों से खेलता रहता, जाल डालता और सीपियाँ बटोरता। रंग-बिरंगी कौड़ियाँ, नाना रूप के सुन्दर-सुन्दर शंख, चित्र-विचित्र पत्थर, न जाने क्या-क्या समुद्र जाल में भर देता। उनसे वह तरह-तरह के खिलौने, तरह-तरह की मालाएँ तैयार करता और पास के बड़े नगर में बेच आता।

उसका एक बेटा था, नाम था उसका हर्ष। उमर अभी ग्यारह की भी नहीं थी, पर समुद्र की लहरों में ऐसे घुस जाता, जैसे तालाब में बत्तख।

एक बार ऐसा हुआ कि कलाकार के एक रिश्तेदार का मित्र कुछ दिन के लिए वहाँ छुट्टी मनाने आया। उसके साथ उसकी बेटी मंजरी भी थी। होगी कोई नौ-दस वर्ष की, पर थी बहुत सुन्दर, बिलकुल गुड़िया जैसी।

हर्ष बड़े गर्व से उसका हाथ पकड़कर उसे लहरों के पास ले जाता। एक दिन मंजरी ने चिल्लाकर कहा, "तुम्हें डर नहीं लगता ?"

हर्ष ने जवाब दिया, "डर क्यों लगेगा, लहरें तो हमारे साथ खेलने आती हैं।"

तभी एक बहुत बड़ी लहर दौड़ती हुई हर्ष की ओर आई, जैसे उसे निगल जाएगी मंजरी चीख उठी, पर हर्ष तो उछलकर उस लहर पर सवार हो गया और किनारे आ गया।

मंजरी डरती थी, पर मन-ही-मन चाहती थी कि वह भी समुद्र की लहरों पर तैर सके। जब वह वहाँ की दूसरी लड़कियों को ऐसा करते देखती तो उसे यह तब और भी जरूरी लगता था। विशेषकर कनक को, जो हर्ष के हाथ में हाथ डालकर तूफानी लहरों पर दूर निकल जाती।

वह बेचारी थी बड़ी गरीब। पिता एक दिन नाव लेकर गए, तो लौटे ही नहीं। डूब गए। तब से माँ मछलियाँ पकड़कर किसी तरह दो बच्चों को पालती थी। कनक छोटे-छोटे शंखों की मालाएँ बनाकर बेचती थी। मंजरी को वह अधनंगी काली लड़की ज़रा भी नहीं भाती थी। हर्ष के साथ उसकी दोस्ती तो उसे कतई पसन्द नहीं थी।

एक दिन हर्ष ने देखा कि कई दिन से उसके पिता एक सुन्दर-सा खिलौना बनाने में लगे हैं। वह एक पक्षी था, जो रंग-बिरंगी सीपियों से बनाया गया था। वह देर तक देखता रहा, फिर पूछा, "बाबा ! यह किसके लिए बनाया है ?"

कलाकार ने उत्तर दिया, "यह सबसे सुन्दर लड़की के लिए है। मंजरी सुन्दर है न ? दो दिन बाद उसका जन्म दिन है। उस दिन तुम इस पक्षी को उसे भेट में देना।"

हर्ष की खुशी का पार नहीं था। बोला, "हाँ-हाँ, बाबा मैं जरूर यह पक्षी मंजरी को दूँगा।"

और वह दौड़कर मंजरी के पास गया। उसे समुद्र के किनारे ले गया और बातें करने लगा। फिर बोला, "दो दिन बाद तुम्हारा जन्म दिन है।"

"हाँ ! पर, तुम्हें किसने बताया ?"

"बाबा ने ! हाँ, उस दिन तुम क्या करोगी ?"

"सवेरे उठकर स्नान करूँगी। फिर सबको प्रणाम करूँगी। घर पर तो सहेलियों को दावत देती हूँ। वे नाचती-गाती हैं। यहाँ भी दावत दूँगी।"

सबसे सुन्दर लड़की

समुद्र के किनारे एक गाँव था। उसमें एक कलाकार रहता था। वह दिन भर समुद्र की लहरों से खेलता रहता, जाल डालता और सीपियाँ बटोरता। रंग-बिरंगी कौड़ियाँ, नाना रूप के सुन्दर-सुन्दर शंख, चित्र-विचित्र पत्थर, न जाने क्या-क्या समुद्र जाल में भर देता। उनसे वह तरह-तरह के खिलौने, तरह-तरह की मालाएँ तैयार करता और पास के बड़े नगर में बेच आता।

उसका एक बेटा था, नाम था उसका हर्ष। उमर अभी ग्यारह की भी नहीं थी, पर समुद्र की लहरों में ऐसे घुस जाता, जैसे तालाब में बत्तख।

एक बार ऐसा हुआ कि कलाकार के एक रिश्तेदार का मित्र कुछ दिन के लिए वहाँ छुट्टी मनाने आया। उसके साथ उसकी बेटी मंजरी भी थी। होगी कोई नौ-दस वर्ष की, पर थी बहुत सुन्दर, बिलकुल गुड़िया जैसी।

हर्ष बड़े गर्व से उसका हाथ पकड़कर उसे लहरों के पास ले जाता। एक दिन मंजरी ने चिल्लाकर कहा, "तुम्हें डर नहीं लगता ?"

हर्ष ने जवाब दिया, "डर क्यों लगेगा, लहरें तो हमारे साथ खेलने आती हैं।"

तभी एक बहुत बड़ी लहर दौड़ती हुई हर्ष की ओर आई, जैसे उसे निगल जाएगी मंजरी चीख उठी, पर हर्ष तो उछलकर उस लहर पर सवार हो गया और किनारे आ गया।

मंजरी डरती थी, पर मन-ही-मन चाहती थी कि वह भी समुद्र की लहरों पर तैर सके। जब वह वहाँ की दूसरी लड़कियों को ऐसा करते देखती तो उसे यह तब और भी जरूरी लगता था। विशेषकर कनक को, जो हर्ष के हाथ में हाथ डालकर तूफानी लहरों पर दूर निकल जाती।

वह बेचारी थी बड़ी गरीब। पिता एक दिन नाव लेकर गए, तो लौटे ही नहीं। डूब गए। तब से माँ मछलियाँ पकड़कर किसी तरह दो बच्चों को पालती थी। कनक छोटे-छोटे शंखों की मालाएँ बनाकर बेचती थी। मंजरी को वह अधनंगी काली लड़की ज़रा भी नहीं भाती थी। हर्ष के साथ उसकी दोस्ती तो उसे कतई पसन्द नहीं थी।

एक दिन हर्ष ने देखा कि कई दिन से उसके पिता एक सुन्दर-सा खिलौना बनाने में लगे हैं। वह एक पक्षी था, जो रंग-बिरंगी सीपियों से बनाया गया था। वह देर तक देखता रहा, फिर पूछा, "बाबा ! यह किसके लिए बनाया है ?"

कलाकार ने उत्तर दिया, "यह सबसे सुन्दर लड़की के लिए है। मंजरी सुन्दर है न ? दो दिन बाद उसका जन्म दिन है। उस दिन तुम इस पक्षी को उसे भेट में देना।"

हर्ष की खुशी का पार नहीं था। बोला, "हाँ-हाँ, बाबा मैं जरूर यह पक्षी मंजरी को दूँगा।"

और वह दौड़कर मंजरी के पास गया। उसे समुद्र के किनारे ले गया और बातें करने लगा। फिर बोला, "दो दिन बाद तुम्हारा जन्म दिन है।"

"हाँ ! पर, तुम्हें किसने बताया ?"

"बाबा ने ! हाँ, उस दिन तुम क्या करोगी ?"

"सवेरे उठकर स्नान करूँगी। फिर सबको प्रणाम करूँगी। घर पर तो सहेलियों को दावत देती हूँ। वे नाचती-गाती हैं। यहाँ भी दावत दूँगी।"

और इसी तरह बातें करते-करते वे न जाने कब उठे और दूर तक समुद्र में चले गए। सामने एक छोटी-सी चट्टान थी। हर्ष ने कहा, "आओ, उस छोटी चट्टान तक चलें।"

मंजरी काफी निडर हो चली थी। बोली, "चलो।" लेकिन दो क्षण बाद अचानक तभी हर्ष ने देखा कि कनक बड़ी चट्टान पर बैठी है। कनक ने चिल्लाकर कहा, "हर्ष, यहाँ आ जाओ।"

हर्ष ने जवाब दिया, "मंजरी वहाँ नहीं आ सकती। तुम्हीं इधर आ जाओ।"

अब मंजरी ने भी कनक को देखा। उसे ईर्ष्या हुई। वह वहाँ क्यों नहीं जा सकती। वह क्या उससे कमजोर है।

वह यह सोच ही रही थी कि उसे एक बहुत सुन्दर शख दिखाई दिया। मंजरी अनजाने ही उस ओर बढ़ी। तभी एक बड़ी लहर ने उसके पैर उखाड़ दिए और वह बड़ी चट्टान की दिशा में लुढ़क गई। उसके मुँह में खारा पानी भर गया। उसे होश ही नहीं रहा।

यह सब आनन-फानन में हो गया। हर्ष ने देखा और चिल्लाता हुआ वह उधर बढ़ा, पर तभी एक और लहर आई और उसने उसे मंजरी से दूर कर दिया। अब निश्चित था कि मंजरी बड़ी चट्टान से टकरा जाएगी, परन्तु उसी क्षण कनक उस क्रुद्ध लहर और मंजरी के बीच आ कूदी और उसे हाथों में थाम लिया।

दूसरे ही क्षण तीनों छोटी चट्टान पर थे। हर्ष और कनक ने मिलकर मंजरी को लिटाया, छाती मली, पानी बाहर निकल गया। उसने आँखें खोलकर देखा। उसे ज़रा भी चोट नहीं लगी थी। पर वह बार-बार कनक को देख रही थी।

अपने जन्म-दिन की पार्टी के अवसर पर मंजरी बिलकुल ठीक थी। उसने सब बच्चों को दावत पर बुलाया। सभी उसके लिए कुछ-न-कुछ उपहार लेकर आए थे। सबसे अन्त में कलाकार की बारी आई। उसने कहा, "मैंने सबसे सुन्दर लड़की के लिए सबसे सुन्दर खिलौना

बनाया है। आप जानते हैं, वह लड़की कौन है ? वह है मंजरी।"

सबने खुशी से तालियाँ बजाईं। हर्ष अपनी जगह से उठा और उसने बड़े प्यार से वह सुन्दर खिलौना मंजरी के हाथों में थमा दिया। मंजरी बार-बार उस ख़िलौने को देखती और खुश होती।

लेकिन दो क्षण बाद अचानक मंजरी अपनी जगह से उठी। उसके हाथों में वही सुन्दर पक्षी था। वह धीरे-धीरे वहाँ आई, जहाँ कनक बैठी थी। उसने बड़े स्नेह भरे स्वर में उससे कहा, "यह पक्षी तुम्हारा है। सबसे सुन्दर लड़की तुम्हीं हो।"

और एक क्षण तक सभी अचरज से दोनों को देखते रहे। फिर जब समझे तो सभी ने मंजरी की खूब प्रशंसा की। कनक अपनी प्यारी-प्यारी आँखों से बस मंजरी को देखे जा रही थी। और दूर समुद्र में लहरें चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें बधाई दे रही थीं।

मैंने झूठ बोला था

एक बालक था। नाम था उसका राम। उसके पिता बहुत बड़े पंडित थे। वह बहुत दिन जीवित नहीं रहे। उनके मरने के बाद राम की माँ अपने भाई के पास आकर रहने लगी। वह एकदम अनपढ़ थे। ऐसे ही पूजा-पाठ का ढोंग करके जीविका चलाते थे। वह झूठ बोलने से भी नहीं हिचकते थे।

वे पेशवा के राज में रहते थे। पेशवा विद्वानों का आदर करते थे। उन्हें दक्षिणा देते थे। वे विद्यार्थियों को भी दक्षिणा देते थे। वे चाहते थे कि उनके राज में शिक्षा का प्रसार हो।

एक दिन बहुत से विद्वान पंडित और विद्यार्थी दक्षिणा लेने महल में पहुँचे। बड़े आदर से सूबेदार ने उन्हें बैठाया। उन्हीं में राम और उसके मामा भी थे। लेकिन वे न तो एक अक्षर पढ़ सकते थे और न लिख सकते थे। राम बार-बार धीरे-धीरे मामा से कहता, ''मामा ! मैं तो घर जा रहा हूँ।''

मामा हर बार डाँट देते, ''चुप रह ! जब से आया है टर-टर किए जा रहा है।''

राम कहता, ''नहीं मामा। मैं यहाँ नहीं बैठूँगा। मैं कहाँ पढ़ता हूँ। मैं झूठ नहीं बोलूँगा।''

राम जब नहीं माना तो मामा ने किचकिचाकर कहा, ''चुप नहीं रहेगा। झूठ नहीं बोलूँगा। हूँ ऊ...। जैसे सच बोलने का ठेका तेने ही तो ले रखा है। जानता है मैं दिन भर झूठ बोलता हूँ। कितनी बार



झूठ बोलकर दक्षिणा ली है। तू भी तो बार-बार झूठ बोलता है। नहीं बोलता ? सब इसी तरह कहते हैं। जो ये सब यहाँ खड़े हैं ये क्या सब पढ़े हुए हैं।''

राम ने कहना चाहा, 'पर मामा...' लेकिन मामा ने उसे बोलने ही नहीं दिया। डपटकर बोला, ''अरे खड़ा भी रह। तेरे सत्य के लिए मैं घर आती लक्ष्मी नहीं लौटाऊँगा, समझे। पूरा एक रुपया मिलेगा एक चेराशाही बस, चुप खड़ा रह। बारी आने वाली है।''

तभी पेशवा के प्रतिनिधि आ पहुँचे। उनके बैठते ही सूबेदार ने विद्वानों की मंडली से कहा, ''कृपा करके आप एक-एक करके आते जाएँ और दक्षिणा लेते जाएँ। हाँ-हाँ, आप आइए, गंगाधर जी।''

गंगाधर जी आगे आए। सूबेदार ने उनका परिचय दिया, ''जी, ये हैं श्रीमान गंगाधर शास्त्री। न्याय पढ़ाते हैं।''

पेशवा के प्रतिनिधि ने उन्हें प्रणाम किया। दक्षिणा देते हुए बोले, ''कृपा कर यह छोटी-सी भेंट ग्रहण कीजिए और खूब पढ़ाइए।''

शास्त्री जी ने दक्षिणा लेकर पेशवा का जय-जयकार किया और उनकी कल्याण कामना करते हुए चले गए। फिर दूसरे आए, तीसरे आए। चौथे नम्बर पर राम के मामा थे। वे जब आगे बढ़े तो सूबेदार ने उन्हें ध्यान से देखा, कहा, ''मैं आपको नहीं पहचान रहा आप कहाँ पढ़ाते हैं ?''

मामा अपना रटारटाया पाठ भूल चुके थे। 'मैं' 'मैं' करने लगे। प्रतिनिधि ने बैचेन होकर पूछा, ''आपका शुभ नाम क्या है ? क्या आप पढ़ाते हैं ? बताइए न ।''

लेकिन मामा क्या बतावें ? इतना ही बोल पाए, ''मैं...मैं...जी मैं...जी मैं वहाँ।''

उनको इस तरह बौखलाते हुए देखकर सब लोग हँस पड़े। पेशवा के प्रतिनिधि ने कठोर होकर कहा, ''जान पड़ता है आप पढ़े-लिखे नहीं हैं। खेद है कि आजकल कुछ लोग इतने गिर गए हैं कि झूठ

बोलकर दक्षिणा लेते हैं। आप ब्राह्मण हैं। आपको झूठ बोलना शोभा नहीं देता। आपको राजकोष से दक्षिणा नहीं मिल सकती पर जो माँगने आया है उसे निराश लौटाना भी अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैं आपको अपने पास से भीख देता हूँ। जाइए।''

सिर झुकाए-झुकाए मामा भीख लेकर चले गए। कुछ देर बाद विद्यार्थियों की बारी आई। एक-एक करके वे आगे बढ़ते, अपना नाम बताते, पाठशाला का नाम बताते और दक्षिणा लेकर प्रणाम करते। फिर लौट आते। राम भी इसी तरह आगे बढ़ा। लेकिन सहसा कुछ बोल नहीं सका। वह लगता था बड़ा प्यारा-प्यारा। सूबेदार ने पूछा, ''तुम पढ़ते हो न ? शाबाश डरो नहीं।''

प्रतिनिधि ने भी कहा, ''कितना प्यारा बच्चा है। यह अवश्य पढ़ता है। क्यों बेटा। पढ़ते हो न ?''

राम ने हिचकते हुए कहा, ''जी...।''

वह आगे कुछ कह पाता प्रतिनिधि ने उसे दक्षिणा दी और बोला, ''शाबाश ! खूब मन लगाकर पढ़ो।''

राम अब भी घबरा रहा था। बच्चे दक्षिणा ले रहे थे पर वह कुछ सोच रहा था। उसके भीतर कोई बोल रहा था, ''तुमने झूठ बोला है। तुम पढ़ते नहीं हो। तुम दक्षिणा नहीं ले सकते। तुम झूठे हो !''

राम काँप उठा। उसका मन बोले जा रहा था, ''आगे बढ़ो। कहो, तुम नहीं पढ़ते। तुमने झूठ बोला था। लो अपनी दक्षिणा...।''

राम क्या करे। एक तरफ मामा थे जो इशारे से बाहर बुला रहे थे। दूसरी ओर कोई भीतर से उसे बार-बार दक्षिणा लौटाने को कह रहा था। वह दो-तीन क्षण पागल-सा खड़ा रहा। फिर एकाएक तेजी से प्रतिनिधि के पास पहुँचा और बोला, ''श्रीमान ! मैंने झूठ बोला है। मैं नहीं पढ़ता। लो अपनी दक्षिणा। मैं इसे नहीं ले सकता।''

उसके ऐसा कहते ही सब उसकी ओर देखने लगे। वे बड़े हैरान थे। लेकिन वे जब तक कुछ समझ पाते राम वहाँ से गायब हो गया।

लेकिन उसके ये शब्द बराबर वहाँ गूँजते रहे, "मैं नहीं पढ़ता। मैं दक्षिणा नहीं ले सकता। मैंने झूठ बोला था।"

मामा ने भी यह दृश्य देखा। वह और भी गुस्से में भर उठे। वे राम को पकड़कर सीधे उसकी माँ के पास ले गए और बोले, "कान खोलकर सुन लो, मैं तुम लोगों को अब अपने यहाँ नहीं रख सकता। तुम्हारे सपूत सत्य के अवतार हैं। झूठ नहीं बोलते। मैं झूठ बोलता हूँ। मैं कहता हूँ—हाँ, मैं झूठ बोलता हूँ, तभी तो तुम्हारा पेट भरता है। नहीं तो कौन था तुम्हारा। भीख भी नहीं मिलती तुम लोगों को।"

बेचारी माँ कुछ भी तो नहीं जानती थी। घबरा गई। कहा, "क्या बात है भइया ! क्या हुआ ? राम ने क्या किया ?"

मामा उसी तरह अकड़कर बोले, "पूछो इसी से। हाथ में आई दक्षिणा लौटा आया है। पूरा एक रुपया मिला था चेराशाही। लेकिन तुम्हारे सपूत ठहरे सचाई के अवतार। ऊहूँ...आगे नाथ न पीछे पगहा। बाप श्रीमान सबको अनाथ बनाकर चले गए। कहे देता हूँ, मेरे घर में टकसाल नहीं खुली है।"

माँ की समझ में अब भी कुछ नहीं आया था। फिर भी भाई के गुस्से को शान्त करने के लिए बोली, "भइया ! आप गुस्सा न करें। आपके सिवा हमारा कौन है। हम अनाथों को आपने ही तो शरण दी है।"

मामा ने व्यंग्य किया, "मैं शरण देने वाला कौन हूँ ? मैं तो झूठ बोलता हूँ। पूछो न अपने बेटे से। आज इसने श्रीमान पेशवा के प्रतिनिधि के सामने मेरा अपमान किया है।"

माँ सकपका गई और गुस्से में भरकर राम से बोली, "क्यों रे राम। क्या तूने अपने मामा का अपमान किया है ? तू इतना गिर गया... ।"

माँ को गुस्से में देखकर राम भी सकपका गया। कुछ बोल न सका। माँ ही बोली, "बोलता क्यों नहीं ? बता, क्या किया तूने। बता... ।"

राम को लगा कि माँ अब उसके गाल पर थप्पड़ जड़ने ही वाली है। इसलिए उसने हिम्मत करके कहा, ''अभी बताता हूँ, माँ। बात यह थी।''

उसने एकाएक रुककर मामा की ओर देखा। फिर दृढ़ होकर कहा, ''माँ बात यह थी कि श्रीमान पेशवा साहब ने उन बालकों के लिए दक्षिणा भेजी थी जो पढ़ते हैं। मैं तो पढ़ता नहीं। मामा ने मुझसे कहा कि मैं झूठ बोलकर दक्षिणा लूँ। मेरा मन नहीं करता था। पर मामा के बार-बार कहने पर मैंने ले ली। लेकिन तब से बार-बार मेरे अन्दर एक आवाज गूँजने लगी, 'राम ! तूने झूठ बोला है। तू पढ़ता नहीं। तूने झूठ बोलकर दक्षिणा ली है। तेरी माँ नाराज होगी। उसने तुझे झूठ बोलने को मना किया है।' मैं घबरा गया। मैंने वह दक्षिणा लौटा दी। अब तू ही बता मैंने इसमें किसका अपमान किया !''

राम बोलता रहा। माँ आँखें मीचे न जाने कहाँ खोई रही। जब वह चुप हो गया तो उसने आँखें खोलीं। वे गीली तो थीं पर, खुशी से चमक रही थीं। राम ने उसे देखा और फिर कहा, ''माँ, क्या झूठ बोलना बुरा नहीं है ? क्या झूठ बोलकर दक्षिणा लेना पाप नहीं है !''

माँ ने दृढ़ स्वर में कहा, ''नहीं राम ! झूठ बोलकर दक्षिणा लेना अच्छा नहीं होता। बहुत बुरा होता।''

मामा जो अब तक चुप थे, एकाएक चीख पड़े, ''क्या बुरा होता है ? घर में लक्ष्मी आना बुरा होता ? बड़ी सत्य का अवतार बनी हो। तभी तो बेटा हाथ से निकल गया है। अरे ! लक्ष्मी क्या सच बोलने से आती है ? अगर मैं सच बोलता रहता तो तुम सबको भूख से तड़प-तपड़कर जान देनी पड़ती। समझी। यह जो दो जून दाल-भात का जुगाड़ हो जाता है वह सच बोलने से नहीं हो सकता।''

माँ ने उत्तर दिया, ''नहीं हो सकता तो न हो। मैं झूठ बोलकर पेट भरने से सच बोलकर भूखी मरना कहीं अच्छा समझती हूँ।''

यह सुनकर मामा के क्रोध का पार नहीं रहा। लाल-पीले होकर

बोले, ''मरना अच्छा समझती है तो मर ! लेकिन मैं तेरे साथ नहीं मर सकता। मैं जाता हूँ।''

और मामा पैर पटकते हुए वहाँ से चले गए। एक बार तो माँ को लगा कि वह उन्हें पुकारे और राम को डाँटे, पर दूसरे ही क्षण उसकी छाती तन गई। राम के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने अपने आँसू पोंछ लिये। राम ने माँ की ओर देखा। मुस्कराया ! बोला, ''मां ! तू डर मत, मैं अब पढूँगा। सूबेदार साहब के लड़के को गुरु जी पढ़ाते हैं। मैं भी वहीं बैठकर पढूँगा। वहाँ फीस नहीं देनी पड़ती। और माँ ! फिर मैं काशी जाऊँगा और शास्त्री बनकर लौटूँगा। तू कहती थी न कि मेरे पिता जी भी काशी से शास्त्री बनकर लौटे थे और श्रीमान पेशवा साहब ने उन्हें अपने हाथ से सोने की बालियाँ पहनाई थीं। मुझे भी पहनाएँगे।''

और सचमुच यह बालक एक दिन काशी से शास्त्री बनकर लौटा। मराठों के इतिहास में यह बालक 'राम शास्त्री' के नाम से प्रसिद्ध है। सच बोलने के कारण राम शास्त्री एक दिन न्यायमूर्ति बने और सच बोलने के लिए ही एक दिन उन्होंने चुपचाप वह पद छोड़ भी दिया।

लेकिन सच को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

कहीं कुछ नहीं बदला

बात बहुत पुरानी है। आलोक तब दो वर्ष का था। एक दिन वह भागता हुआ घर आया तो माँ घर की जमादारिन चन्दो चाची से हँस-हँसकर बातें कर रही थी। चन्दो चाची का रंग कुछ साँवला जरूर था, पर देखने में वह उसे अच्छी लगती थी। सदा मुस्कराती रहती और पान भी खूब खाती, उतना ही बोलती भी। आलोक से वह बड़े प्यार से बातें करती, लेकिन, जब भी वह उससे पान माँगता, वह उसे कभी नहीं देती। कह देती उसके पास एक ही था।

उस दिन भी जब आलोक ने पान माँगा तो चन्दो चाची ने हँसकर वही उत्तर दिया, ''बबुआ, मेरे पास तो एक ही पान था।''

लेकिन उस दिन आलोक ने देख लिया था कि चाची ने एक पान अपनी अंटी में दबा लिया है इसलिए वह चिल्लाया, ''मैंने देख लिया है तुम्हारे पास पान है। तुम हमेशा झूठ बोलती हो......झूठी कहीं की।''

और यह कहते-कहते वह छीनने के लिए झपटा और चाची से हाथापाई करने लगा कि उसकी माँ चिल्ला उठी, ''हैं, हैं, क्या करता है, क्या करता है, परे हट।''

चन्दो चाची भी परे हटती-हटती दीवार से टकरा गई। माँ ने आलोक को खींचते हुए कहा, ''ज़रा भी सऊर नहीं है तुझे। अब नहाना पड़ेगा न इसे जाड़े में। तेरे बाबा ने सुन लिया तो पिटाई होगी सो अलग।''

आलोक की कुछ समझ में नहीं आया। पहले भी कई बार वह नहा चुका है। पिट भी चुका है। आज भी वही होगा पर ऐसा क्यों होता है। क्या हो गया अगर उसने चन्दो चाची को छू लिया। वह टट्टी उठाकर ले जाती है पर माँ भी तो उसके छोटे भाई-बहनों की टट्टी साफ करती है। फिर माँ को छूना क्यों बुरा नहीं है।

वह यह सब सोच ही रहा था कि चन्दो चाची ने कहा, ''भाभी जी ! अब इस सर्दी में कहाँ नहाएगा बच्चा। पानी में सोना दुआ कर छिड़क दो इसके ऊपर।''

माँ ने वही किया। एक गिलास में पानी लिया। फिर कई बार उसमें सोने की अँगूठी डुबोयी। उसके बाद तीन बार वह पानी आलोक पर छिड़का। चन्दो चाची हँसकर बोली, ''अब बबुआ फिर ब्राह्मण बन गए।''

आलोक को यह सब देखने में बहुत आनन्द आया, लेकिन वह यह नहीं समझ पाया ब्राह्मण बनना क्या होता है। चाची के चले जाने पर उसने माँ से पूछा, ''अम्मा, ब्राह्मण बनना क्या होता है ?''

माँ क्या जवाब दे। नहीं देगी तो आलोक क्या उसका पीछा छोड़ेगा। उसने कहा, ''बेटा ! हम ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण ऊँची जात है। दलित ये छोटी जात हैं। इनको छूने से हम भी छोटे हो जाते हैं।''

''और नहाकर फिर बड़े हो जाते हैं,'' आलोक ने कहा।

''हाँ ! नहाने से छूने का दोष दूर हो जाता है। तो नहीं नहा सके उन पर सोने का पानी छिड़क दे। सोना बहुत पवित्र है।''

आलोक ने पूछा, ''लेकिन माँ दलित नहा लें या उन पर सोने का पानी छिड़क दें तो वे ब्राह्मण क्यों नहीं बनते।''

माँ ने प्यार से कहा, ''वे तो जन्म से छोटे होते हैं। वे बड़े नहीं हो सकते।''

आलोक अब क्या करता। उसने माँ की बात मान ली लेकिन अब जब भी वह किसी दलित को देखता तो देखता रहता। सोचता



रहता, इनमें और ब्राह्मणों में फरक क्या है। वही आँख, नाक, कान, हाथ, पैर, मुँह। वैसे ही काम करते हैं, बोलते-चालते हैं, हँसते-रोते हैं।

एक दिन उसने यही बात अपने साथी गोपाल उर्फ गप्पू से कही। गप्पू उमर में उससे बड़ा था। बोला, "ब्राह्मण इसलिए बड़े होते हैं कि मन्दिरों में पूजा कराते हैं। घर में भी पूजा पाठ कराते हैं।"

आलोक ने पूछा, "तुम भी ब्राह्मण हो ?"

गप्पू ने जवाब दिया, "नहीं, हम तो अग्रवाल बनिए हैं। पर हम भी बड़ी जात के हैं।"

"और मुसलमान ?" आलोक ने फिर पूछा।

"मुसलमान उतने छोटे नहीं हैं जितने दलित, पर उनके भी हाथ का छुंआ खाना हम नहीं खाते, पानी भी नहीं पीते।"

"क्या, वह गन्दा हो जाता है ?" आलोक बोला।

"हाँ, बाबा यही कहते हैं।"

दोनों दोस्त बहुत देर तक बड़े-बूढ़ों की तरह बातें करते रहे। आलोक कुछ समझा, कुछ नहीं समझा, पर जब वह शाम को घर लौट रहा था तो उसने बहुत सी औरतों को सिर पर घास की गठरियाँ रखे जल्दी-जल्दी बाज़ार जाते देखा। उसके बाबू ने कल ही उसे डाँटा था, "क्यों बे, तू देखकर भी नहीं चलता बाजार में ? उन चमारियों को छू लिया। आँख फूट गई तेरी। अब घर जा के नहा पहले। फिर मेरे साथ मन्दिर चलियो।"

कई बार वह पिटता भी, लेकिन आदत उसकी भी नहीं छूटती। जैसे ही वह किसी घास वाली को, बुहारी देती किसी जमादारिन को, जूता गाँठते किसी मोची को देखता तो कोई-न-कोई बहाना करके उन्हें छू लेता और फिर दौड़ा-दौड़ा माँ के पास जाता, "माँ, माँ, मुझ पर सोने का पानी छिड़को, मुझे ब्राह्मण बना दो।"

एक-दो बार माँ हँसी। फिर डाँटा। तब भी नहीं माना तो एक दिन पीट दिया। चन्दो चाची तब वहीं थीं, बोली, "न-न भाभी जी।

मारो मत बेटे को। अभी कम अकल है। बड़ा होगा तो भगवान की दया से सब समझ जाएगा।"

समझने की कोशिश तो आलोक भी बहुत कर रहा था। तभी तो कभी इसको छूता, कभी उसको और जानना चाहता कि उसमें क्या बदलाव आ रहा है।

वह एक छोटे से कस्बे में रहता था क्योंकि उसमें छोटा-सा बाजार भी था। वैसे वह एक बड़ा गाँव था। सवेरे घर की गायों को गाँव के बाहर छोड़कर आना पड़ता था। वहाँ से ग्वाला सब गायों को घेरकर जंगल में चराने ले जाता और साँझ पड़े ले आता। एक दिन क्या हुआ, आलोक को कुछ देर हो गई। ग्वाला चला गया। तब आलोक को दूर जंगल में जाना पड़ा, गायों को ग्वाले को सौंपकर लौटते-लौटते देर हो गई। धूप निकल आई। वह थक गया और उसे प्यास लग आई। घर अभी दूर था। क्या करे वह !

तभी देखा, सामने गाँव के बाहर मस्जिद है। आस-पास कोई नहीं है। वह अन्दर चला गया। उसे डर तो लग रहा था क्योंकि वह कभी मस्जिद में नहीं गया था। न जाने वहाँ क्या हो। पर वहाँ तो सब कुछ अच्छा-अच्छा था। सामने पक्का दालान। फिर एक पक्का चौक है। उसके एक कोने पर एक पक्का कुंड है जिसमें पानी भरा था।

उसकी प्यास एकदम तेज हो गई। वह उधर लपका कि पानी पी ले। लेकिन तभी उसे याद आया कि यह पानी तो मुसलमानों का है। मस्जिद मुसलमानों की होती है तो पानी भी मुसलमानों का हुआ। बाबू ने, अम्मा ने, चाचा ने, सभी ने कहा था कि मुसलमान के घर का और उनका छुआ खाना न खाना चाहिए, न पानी पीना चाहिए। इससे धर्म भ्रष्ट हो जाता है।

वह ठिठक गया। लौट पड़ा। लेकिन प्यास के मारे उसकी जान निकल रही थी तो वह क्या करे। उसने फिर चारों ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था...

बस वह तेजी से कुंड के पास पहुँचा। उसने मग्गा उठाया, पानी से भरा और पी गया।

जान में जान आई। उसने लम्बी साँस ली। फिर एकाएक उसे डर लगा कोई देख रहा है क्या ? कोई नहीं देख रहा। तो उसमें कुछ बदलाव आ रहा है क्या।

उसने अपना सिर टटोला। वहाँ सींग नहीं थे। उसने पीठ देखी, वहाँ पूँछ भी नहीं थी। उसके कपड़े-जूते, सब वैसे ही थे। उसने अपने हाथ देखे। उनका रंग भी पहले जैसा ही था। कहीं कुछ नहीं बदला था। सब कुछ पहले जैसा था। दूर जंगल में किसान की आवाज दूर होती जा रही थी। जैसे-जैसे गाँव पास आ रहा था तो कुत्तों के भौंकने और लोगों के बात करने की आवाज पास आ रही थी।

वह गलियों में से होकर घर आ गया। उसका मन अब भी घबरा रहा था लेकिन आज उसने माँ से सोने के पानी की बात नहीं की। उसके मन में एक सवाल पैदा हो रहा था—जब दलितों को छूने और मुसलमान का पानी पीने से कुछ नहीं बदलता तो वैसा करना बुरा कैसे हो सकता है।

नहीं, वह बुरा नहीं है।

लेकिन अभी यह बात वह किसी से कहेगा नहीं। अपने मन में ही रखेगा।

और सचमुच उसने यह बात किसी से नहीं कही। तब तक नहीं कही जब तक वह कॉलेज में पढ़ने नहीं गया।

आज न किसी को छूने से नहाना पड़ता है, न किसी का छुआ खाने से धर्म बिगड़ता है लेकिन प्रोफेसर आलोक को बचपन की वे बातें याद आती हैं तो वे खूब हँसते हैं।

गोरे साहब की पिटाई

मैट्रिक की परीक्षा देने के बाद शरत् मुक्त हो गया। उसका अधिकतर समय राजू के साथ बीतने लगा। बड़ा विचित्र लड़का था राजू। बहुत बहादुर, सुन्दर गाने वाला। गला बहुत मीठा। बाँसुरी बजाता तो दूर-दूर तक लोग, सब काम छोड़कर सुनने लगते। नाटकों में अभिनय भी करता।

सबसे बड़ा गुण उसमें यह था कि गरीबों की सहायता करता और जो अन्याय करता उसे दंड देता। इसी राजू के साथ रहकर शरत् में ये सब गुण आ गए थे। दोनों साथ-साथ नाव में बैठकर गंगा में बने टापू पर जाते और अँधेरा होने पर मछुओं की मछली चुरा लाते, अपने लिए वे चोरी नहीं करते थे। जो भूखे होते थे, उन्हें खाना खिलाते थे। जो गरीबी के कारण अपने बच्चों के लिए दवा नहीं ला सकते थे, मछली बेचकर उन्हें दवा ला देते थे।

वह अंग्रेजों का जमाना था। वे गरीबों की चिन्ता नहीं करते थे। राजू और शरत् को चोरी करनी पड़ती थी। इतना ही नहीं अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को पीटते भी बहुत थे। कोई उनके रास्ते में आ गया तो बस हंटर से खाल उधेड़ दी उसकी।

एक संस्कृत के अध्यापक थे। वेतन बहुत कम था। पढ़ाने के साथ-साथ कुछ और भी काम करते थे। घर लौटते-लौटते रात हो जाती थी। एक दिन ऐसे ही अँधेरे में लौट रहे थे। पीछे से गोरे साहब की घोड़ा गाड़ी आ गई। गोरे साहब ने देखा कि एक काला आदमी उसके

रास्ते में आ गया है। बस चाबुक से उसकी पीठ लहूलुहान कर दी।

अध्यापक जी यह भी नहीं जान सके कि यह किस अपराध का दंड था। शरीर से ज्यादा उनके मन पर चोट लगी। सोचा इस अपमान का बदला कैसे लिया जाए ? तभी उन्हें राजू और शरत् का ध्यान आया। वह उनके पास गए। राजू ने उनकी कहानी सुनी। बोला, "मास्टर मशाइ ! आप घर जाइए ! कल की छुट्टी ले लीजिए। परसों, जो कुछ होगा, आप सुन लेंगे।"

अगले दिन संध्या को राजू और शरत् अपने दल के साथ उस रास्ते पर जाकर बैठ गए। उन्होंने एक बड़ी सी रस्सी लेकर सड़क के दोनों ओर खड़े पेड़ों में बाँध दी। थोड़ी देर बाद गोरे साहब की टमटम आती दिखाई दी। वह मस्ती में आ रहा था। वह सोच भी नहीं सकता था कि किसी ने उसका रास्ता रोक रखा है। जैसे ही घोड़ा दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा तो रस्सी में उलझ गया। साहब उछलकर सड़क पर जा गिरा। लड़के इसी अवसर की ताक में बैठे थे। तुरन्त वहाँ पहुँच साहब को खूब पीटा और कहा, "फिर कभी किसी बेकसूर को मारोगे ?"

कभी नहीं।

बोलो, "माफ करो।"

साहब को कहना पड़ा, "माफ करो।"

राजू ने कहा, "ठीक है, घर जाओ।"

साहब चुपचाप वहाँ से चला गया। उसे इतनी शरम आई कि फिर भागलपुर में न रह सका। बदली कराकर कहीं और चला गया।

बड़े होकर शरत् ने जब लिखना शुरू किया तो वह इस बात को नहीं भूले कि लेखक का सबसे पहला कर्त्तव्य अन्याय का विरोध करना है। और उन्होंने जीवन भर यही किया। बचपन का पाठ कोई कैसे भूल सकता है ?



जब दीदी भूत बनी

दीदी बहुत दिन के बाद घर आई तो बच्चे हर वक्त उसके पीछे लगे रहते थे, "दीदी, कहानी सुनाओ," "दीदी, कहानी सुनाओ।" दीदी बेचारी डॉक्टरी पढ़ रही थी, बड़ी मुसीबत में पड़ी। आखिर कहाँ तक कहानियाँ सुनाती ! बच्चे एक-दो कहानियों से खुश होनेवाले नहीं थे। सोचते-सोचते दीदी को एक रास्ता सूझा। बचपन में वह बड़ी नटखट थी। बस, उसने बच्चों को आपबीती सुनानी शुरू कर दी। उसने पहली कहानी यह सुनाई :

"बच्चो, जब मैं छोटी थी तो हमारे शहर में बहुत से भूत रहा करते थे। आज तो वे भाग गए हैं, पर तब तो जहाँ देखो, वहीं भूत ! हमारे घर के आँगन में भूत, लकड़ी डालनेवाली कोठरी में दाढ़ीवाला भूत, दरवाजे पर भूत, सामने कमेटी की लालटेन पर भूत !"

मालती, जो बच्चों में सबसे बड़ी थी, पूछने लगी, "दीदी ! तब तो बड़ी मुसीबत रही होगी। घर से लोग कैसे निकलते होंगे !"

दीदी बोली, "पूछो मत ! अँधेरा पड़ते ही सब घर में घुस जाते थे। सबसे बड़ा डर तो मोड़वाले भूत का था।"

"वह कैसा था ?" रमेश ने काँपते हुए पूछा।

दीदी हँस पड़ी। बोली, "अरे, तुम तो डरते हो। मैं तब ठीक तुम्हारी उमर की थी। आठवीं में पढ़ती थी। मैंने उन सब भूतों को मार भगाया था।"

बच्चों की उत्सुकता जागी। एक साथ बोले, "सो कैसे, दीदी ?"

"अरे, वही तो बता रही हूँ। बात यह थी कि हमारे घर के आगे अच्छा बड़ा मैदान था। हम लोगों का मन वहाँ खेलने को किया करता था। पर भूतों के डर के मारे हम कुछ नहीं कर सकते थे। मोड़वाला भूत सबसे भयंकर था। वह सफेद कपड़े पहनता था। उसके हाथ में बेंत रहती थी। सिर पर साफा बाँधता था। पैर उसके उल्टे थे। अँधेरा होते ही वह मोड़वाले पत्थर पर आ बैठता था और राह चलतों को मारने लगता था। उसको देखते ही लोगों को बुखार चढ़ आता था। उसके डर से खेलना ही नहीं, रास्ता चलना भी बन्द था।"

रमेश बोला, "फिर तुमने क्या किया, दीदी ?"

दीदी ने जवाब दिया, "मैं जानती थी कि भूत नहीं होते। बड़े भैया, मँझले भैया और पड़ोस की शीला, उमा, शारदा, कुक्कू, बच्ची, ये सब भूतों से परेशान थे। हम रोज सलाह करते कि कैसे इन भूतों से पीछा छुड़ाएँ। आखिर हमें एक उपाय सूझा।"

एकदम सब बोल उठे, "क्या ? वह क्या उपाय था ?"

दीदी ने कहा, "भई, बीच में बहुत मत टोको। मैं सब कुछ बताऊँगी। बात यह थी कि हमारे पड़ोस में एक बूढ़ी दादी रहती थी। बेचारी बहुत भोली थी। कहा करती थी, यह मोड़वाला भूत सबका सरदार है। यह यहाँ से किसी तरह से चला जाए तो फिर और सब भूत भाग जाएँगे। यही बात पकड़कर हमने उसे भगाने की सोची। कुक्कू का दिमाग बहुत तेज था। वह बोला, 'देखो, मुझे एक उपाय सूझा है।' हमने कहा, 'तो फिर जल्दी बताओ।' 'हाँ-हाँ,' उसने जवाब दिया, 'बता तो रहा हूँ। अपनी दादी है न, उससे जाकर कहा जाए कि दादी, मोड़वाले भूत को रसगुल्ले बहुत पसन्द हैं।"

"उसकी बात सुनकर मँझले भैया बड़े जोर से हँस पड़े। बोले, 'कुक्कू को रसगुल्ले बहुत पसन्द हैं, इसलिए उसे रसगुल्ले के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं।'

"कुक्कू भी हँसा। बोला, 'भैया, डरो नहीं। हिस्सा सबको मिलेगा,

मगर मेरी बात सुन लो।'

"मैंने कहा, 'तुम कहे चलो।'

"कुक्कू बोला, 'हाँ, तो मैं कह रहा था, दादी से जाकर कहा जाए कि दादी, मोड़वाला भूत रसगुल्ले पसन्द करता है। रात वह पुकारकर कह रहा था कि अगर तुम लोग मुझे रसगुल्ले खिलाओ तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा। यह बात हम सब बारी-बारी से जाकर कहें, पर एक बात का ध्यान रखें।'

" 'वह क्या ?' बड़े भैया भी बोल उठे।

" 'अभी किसी और को इसका पता न लगे।'

" 'ठीक है।' बड़े भैया ने कहा, 'हम कहेंगे, दादी, भूत तुम्हारे हाथ से ही रसगुल्ले खाना पसन्द करेगा।'

" 'सो तो ठीक है।' बच्ची बोल उठा, 'भूत कौन बनेगा?'

"यह बात सुनकर एक बार तो सब चुप हो गए और एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

"बड़े भैया बोले, 'भूत तो मैं बन जाता, पर बात यह है कि मैं कुछ बड़ा हूँ।'

" 'और मैं छोटा हूँ।' बच्ची ने कहा।

" 'भाई, मैं तो बीच का हूं।' मँझले भैया ने हँसते हुए कहा, 'मैं तो बन ही नहीं सकता।"

"मैं ठहरी नटखट। बोली, 'तुम बड़े, न छोटे, न बीच के। तुम तो डरपोक हो। भूत मैं बनूँगी।' यों तो सब शेर बने हुए थे, पर डर सबके दिल में था। मेरी बात सुनकर वे कुछ नाराज तो हुए, पर उनके दिल का बोझ उतर गया।

यहाँ आकर मालती से न रहा गया। बोली, "तो दीदी तुम भूत बनी थीं ?"

"हाँ, बनी थी।" मैंने कहा।

सब बच्चे अचरज से मुझे देखने लगे। मैंने हँसकर कहा, "तो

हमने दादी को सब बातें सुना दीं। दादी को भी विश्वास आ गया, परन्तु थी डरपोक। बोली, 'मैं भूत के सामने नहीं जाऊँगी।' हमने कहा, 'दादी, उसके सामने जाने की बिलकुल जरूरत नहीं है। तुम तो रसगुल्ले पत्थर पर रख आना।' "

रमेश बोला, "फिर ?"

"फिर दादी दो दिन तक दो रसगुल्ले वहाँ ले जाकर रखती रही, पर भूत ने उन्हें नहीं उठाया। दादी को शंका हुई। बात यह थी कि हम भूत को बड़ा दिखाना चाहते थे, जो दो नहीं, बीस रसगुल्ले खाता है। इसलिए दादी जब तीसरे दिन हमारे पास आई, तो कुक्कू ने मुँह बनाकर कहा, 'दादी, तुम कहा करती थीं कि मोड़वाला भूत बहुत बलवान है, बहुत भयंकर है, उसे तुम दो रसगुल्ले दिखाना चाहती हो, वह तो बीस-पच्चीस से कम खानेवाला नहीं।'

" 'बीस !' दादी बोली।

" 'हाँ-हाँ दादी, कल उसने बच्ची से कहा था, तुम मुझसे मजाक करते हो। मैं पच्चीस से कम रसगुल्ले नहीं खाता !"

'बड़ा पेटू है !'

'हैं-हैं, ऐसा न कहो, ऐसा न कहो। सुन लेगा।' बच्ची ने काँपकर कहा, 'और दादी, लो यह बारह आने। इनके रसगुल्ले लाकर रखना। आज वह अवश्य ले जावेगा।'

दादी हँसकर बोली, 'अरे, पैसे रहने दे। बहुत आया पैसेवाला ! मैं आज बीस-बाईस रसगुल्ले लाकर रखूँगी।'

मालती ने हँसकर कहा, "तुमने तो दीदी, दादी को खूब बनाया !"

दीदी बोली, "सुनो तो ! जब दादी चली गई तो आज हमने खेल खत्म करने की बात सोची। जैसे ही अँधेरा हुआ, सब लोग घरों में घुस गए, चारों ओर अँधेरा छा गया। वैसे भी जाड़ों की अँधेरी रात थी। छोटे से कस्बे में आठ बजे और आधी रात हुई। बस, मैंने भूत का वेश बनाया। पिता जी का सफेद कोट और पाजामा पहना, बड़ा

सा साफा बाँधा..."

रमेश टोक बैठा, "पर दीदी, पैरों का क्या किया ?"

"भई टोको मत, सुने जाओ। मैंने अपने बालों का जूड़ा इस तरह बनाया कि वह मुँह-जैसा चौड़ा हो गया। उस पर सफेद कपड़ा बाँधकर फिर कागज का बना चेहरा चिपका लिया। असली मुँह की ओर लम्बी नकाब डाल ली। बस पैर उल्टे हो गए।"

"फिर क्या हुआ ?" मालती उत्सुकता से बोली।

"फिर मैंने हाथ में बेंत ली और दादी की राह देखने लगी। थोड़ी देर में देखा, दादी आ रही है। सबकी साँस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे। दादी के हाथ में टीन का डिब्बा था, बन्द। वह काँप रही थी। बार-बार चारों ओर देख लेती थी। पत्थर के पास तक पहुँचने में उसे आधा घंटा लग गया। पहुँचते ही उसने डिब्बे को काँपते हाथों से पत्थर के पास रखा और मुड़कर तेजी से झपटी। मैं वहीं छिपी हुई थी। झट जाकर पत्थर पर खड़ी हो गई। दो-तीन कुत्ते इधर-उधर बैठे हुए थे। उन्होंने मुझे देखा तो मुहल्ले को सिर पर उठा लिया। बेचारा एक आदमी देर से घर लौट रहा था। उसने मुझे दूर से देखा तो 'भूत' 'भूत' चिल्लाता हुआ भागा। दादी घर पहुँच चुकी थी। आवाज सुनकर चौंकी। ऊपर खिड़की से झाँका। मैं अभी वहीं खड़ी थी, बस जैसे जान निकल गई। खट से खिड़की बन्द कर दी। मैं डिब्बा उठाकर घर आ गई। सब लोग राह देख रहे थे। हँसते-हँसते लोटपोट हो गए। खूब रसगुल्ले खाए।"

बच्चे, जो अब तक डर और अचरज से काँप रहे थे, जोर से हँस पड़े। बोले, "तुमने बड़ी शरारत की थी, दीदी !"

दीदी ने कहा, "भूत तो शरारत से भागते हैं।"

"लेकिन दीदी, आगे क्या हुआ ?" मालती ने हँसते-हँसते पूछा, "दादी को तुम्हारी शरारत का पता लगा ?"

मैंने कहा, "दादी सबेरा होते ही हमारे घर आई। बोली, 'बेटी,

भूत भाग गया है। रात उसे मैंने अपनी आँखों से देखा।'

" 'सच ?' मैंने हँसी रोकते हुए कहा।

" 'बेटी, जैसे ही मैं रसगुल्ले रखकर लौटी, वह न जाने कहाँ से निकलकर आया। कुत्ते भौंकने लगे, कोई आदमी आ रहा था, बेचारा 'भूत-भूत' करके भागा। मैंने खिड़की से उसे डिब्बा उठाते और हवा में उड़ते देखा।' "

मेरी हँसी रुक नहीं रही थी।

"दादी कह रही थी, 'बेटी, क्या बताऊँ। सफेद-बुर्राक कपड़े थे। हाथ में बेंत थी, सिर पर मुंडासा था और पैर उल्टे थे।' "

"तो दादी, अब यहाँ भूत नहीं रहेंगे !"

"रहने तो नहीं चाहिए।"

दादी ने अपनी कहानी सबको सुनाई। हर जगह कुछ रूप बदल जाता था, यानी बच्ची से उन्होंने कहा, भूत की तीन आँखें थीं। कुक्कू को बताया, चार हाथ थे। पिता जी को पता लगा तो बड़े हँसे। बोले, 'बड़े दुष्ट हो। इस तरह रसगुल्ले खाते हो !'

"भैया बोले, 'पिता जी, भूत को भगाया है। अब खेलने को जगह तो मिलेगी।' पिता जी हँसे, मेरी पीठ ठोकी। अब हम बड़े आराम से मैदान में खेलने लगे। रात को देर तक वहाँ ऐसा कोहराम मचाते कि दादी की नींद हराम हो जाती। खिड़की से झाँककर दादी कहती, 'अरे बेटो, एक भूत गया तो तुम दस भूत बन गए। सोने भी दोगे !'

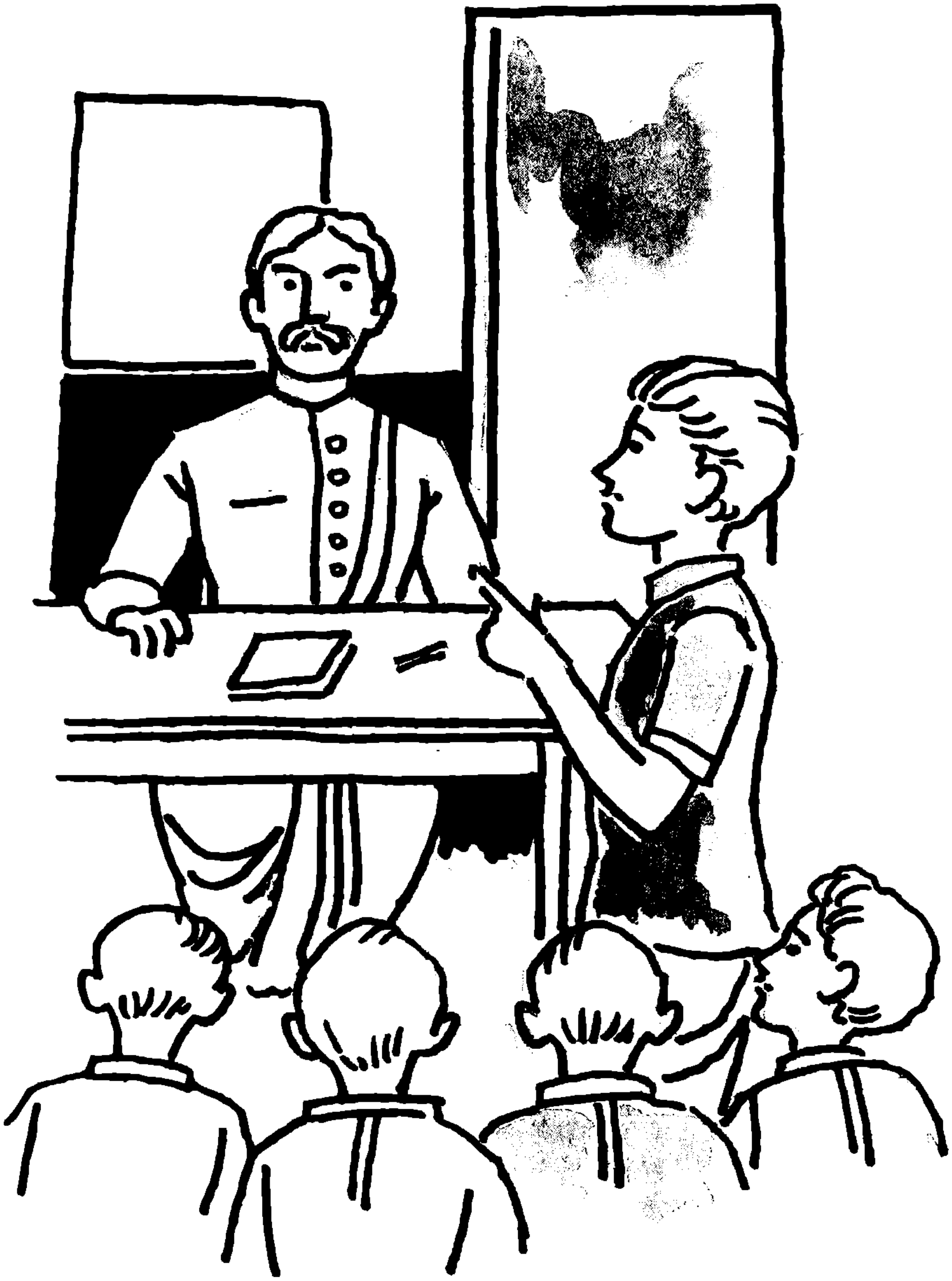
वह आवाज़

मंटू जब स्कूल से लौटा तो बहुत थका-थका सा था। घर के दरवाज़े में प्रवेश करते ही वह अपनी माँ को मुस्कराते हुए पाता था। आज उसकी माँ वहाँ नहीं थी। वह अन्दर घुसा चला आया। उसने अपने कमरे में जाकर बस्ता पटका और माँ की तलाश में निकल पड़ा। उसका जी कर रहा था कि वह झपटकर माँ के गले से लिपट जाए और रोना मुँह बनाकर उसे डाँट पिलाए, 'आज तुम दरवाज़े पर क्यों नहीं मिलीं ? मुझे जोरों की भूख लग रही है।'

भूख की याद आते ही उसे लगा कि जैसे वह सचमुच ही भूखा है। रोज़ ऐसा होता था। स्कूल से आने पर माँ उसे खाने के लिए दे देती थी, लेकिन आज तो सब कुछ उलट-पलट हो गया। आखिर बात क्या है ? माँ कहाँ गई ?

सोचता-सोचता वह रसोई के पास वाले कमरे में जा पहुँचा। वहीं बैठकर वे लोग खाना खाया करते थे। वे लोग बहुत अमीर नहीं थे। घर में बढ़िया खाने की मेज़ भी नहीं थी, लेकिन फिर भी जिस दिन किसी का खाना होता, उस दिन दो-तीन छोटी-छोटी मेजें जोड़कर उन पर चादर बिछा दी जाती थी और खाना लगा दिया जाता था।

अचरज से मंटू ने देखा कि आज भी सब कुछ उसी तरह लगा हुआ है। ज़रूर कोई खाने पर आने वाला होगा ? तब तो बड़ी अच्छी, बढ़िया-बढ़िया चीजें खाने को मिलेंगी। यह सोचते-सोचते उसकी निगाह मेज़ पर गई। उस पर सजा था खाने का सामान—सेब, चीकू, सन्तरे,



रसगुल्ले, दालबीजी इत्यादि-इत्यादि।

उसने सोचा, माँ ज़रूर रसोईघर में समोसे बना रही होगी। हाँ, रामू भी दिखाई नहीं देता। वह ज़रूर बाज़ार गया होगा। पिता जी शायद अभी तक दफ़्तर से नहीं आए। वे मेहमान को लेकर आएँगे। वे हमेशा ही ऐसा करते हैं, पर पम्मी अभी तक क्यों नहीं आई ? ज़रूर उसके स्कूल में आज कोई खास बात है।

उसे लगा जैसे वह अकेला है। आसपास कोई नहीं। सामने फल और मिठाई देखकर उसके पेट में ज़ोर-ज़ोर से चूहे कूदने लगे।

तभी उसने सुना, जैसे कोई उसका नाम लेकर धीरे से पुकार रहा है, 'मंटू !'

मंटू चौंक पड़ा। उसने एकदम घूमकर पीछे की ओर देखा, लेकिन वहाँ तो कोई भी नहीं था।

तब तक वह मेज़ के बिलकुल पास आ पहुँचा। अब वह सब कुछ भूल गया। उसने हाथ बढ़ाकर एक चीकू उठाया। एक रसगुल्ला लिया और इधर-उधर देखकर उसने दोनों चीजें खाईं। लेकिन बार-बार उसे ऐसा लगता रहा जैसे किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा है, 'मंटू, तुमने ठीक काम नहीं किया। यह चोरी है। तुमने माँ से नहीं पूछा।'

इतने में चीखती-चिल्लाती उसकी बड़ी बहन पम्मी भी वहाँ आ पहुँची। उसने तेज़ी से अपना बस्ता पटका और बोली, "अरे, मंटू भइया ! जानते हो, आज हमारे स्कूल में क्या हुआ ?" मंटू ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वह अपने में खोया रहा। पम्मी ने यह देखकर पूछा, "अरे, मंटू भइया ! तुम ऐसे उदास क्यों बैठे हो ? मम्मी कहाँ हैं ?"

मंटू तलखी से बोला, "मैंने मम्मी को नहीं देखा।"

पम्मी बोली, "तो आओ, हम देखते हैं। आज अशोक चाचा चाय पर आने वाले हैं। वे उन्हीं के लिए समोसे बना रही होंगी।"

यह कहती हुई पम्मी रसोई की ओर भागी। मंटू उसके पीछे-पीछे

चला।

माँ रसोईघर में नहीं थीं। दोनों बच्चे निराश होकर लौट ही रहे थे, तभी उन्होंने माँ को आते हुए देखा। वे मुस्कराईं और बोलीं, ''मुझे ज़रा देर हो गई। आज तुम्हारे अशोक चाचा आ रहे हैं। उनको हमारे मुहल्ले की बरफ़ी बहुत अच्छी लगती है। वही लेने गई थी। अच्छा, आओ, कपड़े बदलो, हाथ-मुँह धोओ। मैं तुम्हारा नाश्ता तैयार करती हूँ।''

दोनों बच्चे तैयार होने के लिए चले गए। पम्मी ज़ोर-ज़ोर से कहानी पर कहानी सुनाती रही, लेकिन मंटू बराबर कुछ सोचता रहा। बराबर कहीं खोया रहा। उसने अपने कपड़े बजाय खूँटी पर टाँगने के एक कोने में फेंक दिए। हाथ-मुँह धोते समय दो बार लोटा उसके हाथ से छूटकर गिरा।

यहाँ तक कि चाचा के आने पर भी उसकी उदासी दूर नहीं हुई, उसे खुश करने के लिए चाचा ने कई गीत सुनाए, किन्तु वह नहीं हँसा। उस रात उसने एक सपना देखा—चीकू और रसगुल्ला उसके पेट में कूद रहे हैं और कह रहे हैं, 'मंटू, तुमने हमें अपनी मम्मी से बिना पूछे खाया था। तुमने ठीक काम नहीं किया।'

वह सबेरे उठा, किन्तु वह अब भी प्रसन्न नहीं था। उस दिन उसने स्कूल का काम भी मम्मी से ही कराया। स्कूल में सबसे पहला पीरियड गणित का था। आज उसके सारे सवाल ठीक थे। अध्यापक ने प्रसन्न होकर उसकी पीठ थपथपाई और कहा, ''मंटू, तुम होशियार होते जा रहे हो। इसी तरह मेहनत करोगे तो क्लास में फर्स्ट आओगे।''

मंटू ने अध्यापक की बातें सुनीं। वह चुप रहा। उसे लगा जैसे किसी ने फिर पुकारा है, 'मंटू, तुमने फिर ग़लत काम किया।'

मंटू चौंक पड़ा। लेकिन जितना ही वह चौंकता आवाज़ उतनी ही तेज़ होती। उसने साफ़-साफ़ सुना। आवाज़ कह रही थी, 'मंटू, तुमने ठीक काम नहीं किया। सवाल तुमने अपने आप नहीं किए हैं।

अपनी मम्मी से कराए हैं।'

मंटू ने सोचा, 'आखिर यह आवाज़ कहाँ से आती है ? क्या मेरे अन्दर से आती है ? क्या रात के सपने की तरह सवाल भी मेरे पेट में बैठे हुए बोल रहे हैं ?'

मंटू को लगा जैसे उसे पसीना आ रहा है। वह मशीन की तरह अपनी सीट से उठा और अध्यापक की मेज़ के पास आ गया। वह धीरे से बोला, "सर, मैं आपको एक बात बताना भूल गया था।"

अध्यापक ने पूछा, "क्या बात है ?"

मंटू ने धीरे से कहा, "सर, ये सवाल मैंने नहीं, मेरी मम्मी ने किए थे।"

अध्यापक ने मंटू को ऊपर से नीचे तक देखा फिर उसकी आँखों में झाँका और मुस्कराकर बोले, "तो क्या हुआ ! आज तुमने अपनी मम्मी से पूछकर किए हैं, तो कल अपने आप कर लोगे। मुझे खुशी है कि तुमने मुझे सच बात बता दी।"

मंटू को लगा जैसे एक ही क्षण में सब-कुछ पलट गया है। वह बिलकुल हलका हो गया है। मास्टर जी जो कुछ पढ़ा रहे हैं, वह सब उसे बहुत अच्छी तरह समझ आ रहा है। उसे बहुत खुशी हुई। वह दिन-भर बहुत प्रसन्न रहा, लेकिन बीच-बीच में मिठाई की बात उसे याद आती रही।

छुट्टी मिलने पर वह सदा की तरह भागता हुआ घर आया। देखा, माँ दरवाजे पर खड़ी मुस्करा रही हैं। वह उनके गले से चिपट गया। मंटू बोला, "मम्मी, मम्मी, मैं तुम्हें एक बात बताना भूल गया था। कल जब मैं घर आया था तो तुम मुझे यहाँ नहीं मिली थीं। मुझे बड़ी भूख लग रही थी। तुमसे बिना पूछे मैंने एक रसगुल्ला और एक चीकू उठाकर खा लिया।"

मम्मी एक क्षण को गम्भीर हुईं, फिर मुस्कराकर बोलीं, "तो कल तुमने चोरी की थी, लेकिन कोई बात नहीं। देर से ही सही, तुमने मुझे

बता दिया। आओ, कपड़े बदलो। मैं तुम्हारे लिए नाश्ता लगाती हूँ। लेकिन, हाँ बेटे, तुम्हें अपना अपराध स्वीकार करने के लिए किसने कहा ?"

मंटू ठिठका, फिर बोला, "पता नहीं, मम्मी ! तब से बराबर कोई मुझसे कहे जा रहा है, 'मंटू तुमने ग़लती की है।' असल में मम्मी, वह चीकू और रसगुल्ला मेरे पेट में बैठे-बैठे बोल रहे हैं। सपने में मैंने उन्हें ही देखा था।"

मम्मी का चेहरा खिल उठा, वह बोली, "मंटू, यह तुम्हारी अपनी ही आवाज़ है। जब कोई बुरा काम करता है तो वह आवाज़ तुरन्त उसे चेता देती है।"

मंटू बोला, "मम्मी, मैंने अध्यापक से भी कह दिया था कि आज ये सवाल मेरी मम्मी ने किए हैं, मैंने नहीं। वे बहुत खुश हुए।"

यह सुनते ही दोनों हाथ आगे बढ़ाकर मम्मी ने मंटू को अपनी छाती में भर लिया। फिर उसके गालों को बार-बार चूमती हुई बोलीं, "तुम बहुत अच्छे हो, बहुत ही भोले और सच्चे।"

मछुए का बेटा

बहुत पुरानी बात है। समुद्र के किनारे एक मछुआ रहता था। उसके एक बेटा था। नाम था लछमन। मछली पकड़कर वह अपने परिवार का पेट पालता था। माँ-बाप बूढ़े हो चुके थे, इसलिए अकेले ही उसको सब काम करना पड़ता। दिन-भर मेहनत करने के बाद भी वह इतना नहीं बचा पाता था कि सबकी गुज़र हो सके, इसलिए वह दुखी रहता था।

एक दिन क्या हुआ कि उसके जाल में मछली तो आई नहीं, एक कछुआ आ फँसा। लड़का बेचारा सोच में पड़ गया। बात यह थी कि समुद्र के देवता का हुक्म था कि कछुओं को नहीं सताना चाहिए। जो उन्हें सताएगा उसको देवता दंड देंगे। तो अब वह क्या करे ? कछुए को ले जाता है तो देवता का डर है, नहीं ले जाता तो घर वाले भूखे रहेंगे।

बहुत देर तक सोचता रहा। आखिर उसने कछुए को ले जाना ही तय किया। और क्यों न ले जाए ? वह भूखा मरता रहे तो देवता क्या उसकी मदद करता है ? नहीं करता। तो वह भी उसकी चिन्ता क्यों करे।

बस, वह कछुए को लेकर चल पड़ा। तभी क्या देखता है कि एक बहुत ही सुन्दर परी उसे पुकार रही है। कह रही है, ''सुनो, इसे मत ले जाओ। देवता तुम्हें दंड देगा।''

लछमन ने उत्तर दिया, ''नहीं ले जाऊँगा तो मेरे घर वाले भूखे



मरेंगे। देवता मुझे खाने को क्यों नहीं देते ?"

परी बोली, "अच्छा, अगर तुमको मैं खाने को दूँ तो क्या इसे छोड़ दोगे ?"

लछमन ने कहा, "ज़रूर छोड़ दूँगा।"

परी बोली, "तो आओ मेरे साथ।"

तभी क्या हुआ कि बड़ी प्यारी-प्यारी हवा चलने लगी। मछुए के बेटे ने अचकचाकर चारों ओर देखा तो चकित रह गया। वह जैसे किसी परीलोक में पहुँच गया था। सब-कुछ सुन्दर-ही-सुन्दर था। सुन्दर-सुन्दर मकान, सुन्दर-सुन्दर सड़कें, बाग-बगीचे, फल-फूल, नदी, ताल—सब कुछ इतना सुन्दर और इतना मोहक था कि उसकी आँखें खुली रह गईं। न वहाँ बूढ़े थे, न बीमार, न कोई मरता था, न किसी को चोट लगती थी। सब हँसते, खिलखिलाते, नाचते-कूदते और अपना काम करते। काम भी वहाँ कोई पत्थर तोड़ना नहीं था। अपने-आप ही सब-कुछ हो जाता था।

दो-चार दिन तो मछुए का बेटा वहाँ ऐश करता रहा। लेकिन फिर उसे अपने घर की याद हो आई। याद आई तो बेचारा बेचैन हो उठा। तुरन्त परी के पास पहुँचा। बोला, "मैं तो घर जाऊँगा।"

परी ने कहा, "पागल हुए हो ? घर जाओगे ? वहाँ भूखे मरना होगा। ऐसी सुन्दर जगह को छोड़कर भी कोई जाने की बात सोचता है ? नहीं-नहीं, तुम यहीं रहो।"

लेकिन मछुए के बेटे को याद सता रही थी। उसने कहा, "मैं तो जाऊँगा ही। मुझे मेरे घर पहुँचा दो।"

परी ने बहुत समझाया, लेकिन वह नहीं माना। आखिर उसने उस लड़के को एक डिबिया दी और कहा, "यह डिबिया तुम्हारे पास रहेगी तो तुम यहाँ वापस लौट आओगे। लेकिन खबरदार इसे खोलना मत। इसे खोला तो तुम यहाँ नहीं आ सकोगे ?"

लड़के ने कहा, "मैं इसे नहीं खोलूँगा।"

तब परी ने उसे उसके गाँव में पहुँचा दिया। लछमन ने देखा, गाँव लगता तो उसी का है। समुद्र भी वही है। लेकिन सब कुछ बदला-बदला नज़र आ रहा है। आदमी भी पहचान में नहीं आ रहे। डरता-डरता आगे बढ़ा। जहाँ उसका घर था, वहाँ पहुँचा। देखा, वहाँ तो कोई बहुत सुन्दर मकान बन गया है। उसके माँ-बाप का भी कहीं पता नहीं है। बेचारा बहुत घबराया। कहीं गलत तो नहीं आ गया ? लेकिन नहीं, गाँव तो वही है। समुद्र जाने का रास्ता भी यही है और यहाँ वह मछलियाँ पकड़ा करता था। लेकिन फिर यह सब क्या हुआ ?...

आखिर उसने एक आदमी से पूछा, "क्यों भाई, यहाँ एक मछुआ रहता था। उसका परिवार था। वे कहाँ चले गए ?"

आदमी ने अचरज से उसकी ओर देखा, कहा, "यहाँ तो बहुत मछुए रहते थे। किसकी बात पूछते हो ?"

लछमन ने कहा, "उसका नाम शिब्बन मछुआ था।"

वह आदमी हँस पड़ा। बोला, "तुम कहाँ से आए हो ? मैंने अपने पिता जी से सुना है कि शिब्बन नाम का एक मछुआ यहाँ रहता तो था पर वह तो बहुत पुरानी बात है। पचास-साठ साल पुरानी बात है। वह तो कभी का मर गया। उसके घर वाले भी मर गए। उसके एक लड़का था जो सुना है, समुद्र में डूब गया था।"

लछमन ने सुना तो हक्का-बक्का रह गया। काटो तो खून नहीं। यह कैसी बात करता है ? अभी दो-चार दिन पहले ही तो मैं यहाँ से गया था। पचास-साठ साल कैसे हो गए ?

उसने बहुत पता लगाया, पूछा, लेकिन कुछ पल्ले नहीं पड़ा। लोग उसकी बात सुनते और हँस पड़ते। कुछ उसे पागल कहते। बेचारा परेशान होकर समुद्र के किनारे चला गया। वह क्रोध से भरा आ रहा था। उसने सोचा, हो न हो, यह सब इस डिबिया के कारण हुआ है। ज़रूर इसमें कोई बात है। मैं इसे खोलूँगा।

तभी कहीं से आवाज़ आई, ''इसे मत खोलना। नहीं तो वापस नहीं लौट सकोगे।''

''नहीं-नहीं, मैं इसे ज़रूर खोलूँगा।''

कुछ देर तक वह इसी तरह सोचता रहा लेकिन वह इतना दुखी हो चुका था कि उसने उस डिबिया को खोलने का फैसला कर लिया।

उसने वह डिबिया खोल डाली। और यह क्या ! डिबिया के खुलते ही वह बिलकुल बदल गया। उसके शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गईं। उसके हाथ-पैर डगमगाने लगे। उसने देखा कि वह बूढ़ा हो गया है। अब तो वह और भी परेशान हो उठा। उसने अपना सिर पीट लिया। वह अब वापस कैसे जाएगा ? नहीं, अब वह वापस नहीं जा सकेगा।

और सचमुच ही वह फिर कभी वापस नहीं जा सका।

यह कहानी परी की कहानी है। लेकिन यह परी जादू की परी नहीं बल्कि सचमुच की परी है। यहाँ परी का मतलब विज्ञान से है। विज्ञान क्या कर सकता है, यही यह कहानी बताती है। आज भी विज्ञान के कारण आदमी चन्द्रमा पर पहुँच गया है, नई दुनियाओं की खोज कर रहा है। अब यह खोज पूरी हो जाएगी तो हम अवश्य ऐसे लोक में पहुँच जाएँगे जहाँ 'एक दिन' हमारी इस दुनिया के सैकड़ों वर्ष के बराबर होगा। मछुए का बेटा जिस लोक में पहुँच गया था, वहाँ के दो-चार दिन हमारी इस दुनिया के पचास-साठ वर्ष के बराबर थे। इस जापानी परी कथा में किसी ने बहुत पहले यह कल्पना की थी, लेकिन अब यही कल्पना सच्ची होने जा रही है।

गुड़िया खो गई

एक नन्ही-मुन्नी लड़की थी। नाम था उसका चित्रा, पर सभी उसे प्यार से गुड़िया कहकर पुकारते थे। वह थी भी गुड़िया जैसी सुन्दर और प्यारी-प्यारी। जब हँसती तो अँधेरे में उजाला हो जाता। लेकिन हँसती वह कम थी। उसका पिता कलाकार था। बहुत अच्छी-अच्छी गुड़िया बनाता था। दूर-दूर तक उसका नाम था। फिर भी उसके पास पैसा नहीं था।

चित्रा अचरज से पिता को गुड़िया बनाते देखती। फिर पूछती, "बाबा, यह बड़ी प्यारी गुड़िया है। इसका क्या करोगे ?"

पिता कहता, "बेचूँगा।"

नन्ही-मुन्नी चित्रा बेचने की बात समझ न पाती। उसे यह अच्छा नहीं लगता था कि पिता उसे खेलने के लिए कभी गुड़िया नहीं देते।

एक दिन क्या हुआ, गाँव का मुखिया उसके पिता के पास आया और बोला, "आज से दस दिन बाद इस देश की राजकुमारी का जन्म-दिन है। उस दिन वह महारानी के साथ राजधानी जाती हुई हमारे इस गाँव से गुजरेंगी। हमने यह तय किया है कि राजकुमारी को जन्म दिन की ख़ुशी में कोई बढ़िया-सा उपहार दिया जाए। तुम तो बड़े कलाकार हो। कोई बढ़िया-सी प्यारी-प्यारी गुड़िया बनाओ न !"

कलाकार बहुत खुश हुआ। उसने कहा, "पूरी कोशिश करूँगा कि ऐसी सुन्दर गुड़िया बनाऊँ, जैसी परी-लोक की राजकुमारी।"

और सचमुच वह तुरन्त गुड़िया बनाने में जुट गया। ऐसा जुटा

कि खाना-पीना भी भूल गया, पर था वह बहुत खुश। चित्रा उसे खाने के लिए बुलाने आती तो मुस्कराकर कहता, "गुड़िया रानी ! तुम्हारे जैसी एक गुड़िया बनानी है न मुझे। पहले वह बना लूँ, तब खाना खाऊँ।"

चित्रा खुश होती, पूछती, "बाबा, यह गुड़िया किसे दोगे ?"

कलाकार मुस्कराता। कहता, "किसी को जन्म-दिन के अवसर पर उपहार में देनी है। बस पाँच दिन और हैं।"

"पाँच दिन !" चित्रा ने सोचा, "पाँच दिन बाद किसका जन्म-दिन है ? जन्म-दिन तो मेरा भी आने वाला है। हाँ-हाँ, माँ कह रही थी, मेरा जन्म-दिन सोमवार को है। और आज है बुधवार ! पाँचवें दिन क्या होगा ! हाँ-हाँ, सोमवार होगा। उस दिन तो मेरा जन्म-दिन है। तो क्या बाबा मेरे लिए गुड़िया बना रहे हैं ?"

वह खुशी से नाच-नाच उठी। सब काम छोड़कर वह बाबा के पास आ जाती और घंटों बैठी गुड़िया को देखती रहती।

बहुत भोली थी बेचारी। रात को सोती तो गुड़िया के ही सपने देखती। दोनों परी-लोक में घूमतीं। खूब बातें करतीं।

आखिर गुड़िया पूरी हुई। मुखिया ने उसे पहनाने को रेशमी कपड़े भेजे ! मोतियों के गहने भेजे। गुड़िया उन्हें पहनकर ऐसी लगी कि अब बोल उठेगी, अब खिलखिलाकर हँस पड़ेगी।

अगले दिन महारानी का रथ गाँव में आया। गाँव खूब सजा था। सब लोगों ने नए-नए कपड़े पहने थे। सबने महारानी का स्वागत किया। चित्रा ने देखा कि उसके पिता ने आगे बढ़कर गुड़िया राजकुमारी को बड़े प्यार से भेंट कर दी।

नन्हीं चित्रा के दुख का पार नहीं था। वह समझ गई थी कि उसके पिता यह गुड़िया राजकुमारी के लिए बना रहे थे, उसके लिए नहीं। यह सब जानकर उसकी आँखों में आँसू भर आए। वह वहाँ से भाग गई। किसी ने उसे नहीं देखा। सब लोग रानी और राजकुमारी



के स्वागत में जो लगे थे। रानी बहुत प्रसन्न थी। राजकुमारी भी बहुत प्रसन्न थी। गुड़िया की दोनों ने बहुत प्रशंसा की, लेकिन जब वे जाने लगीं तो एकाएक रानी ने पूछा, "क्या आज इस गाँव में भी किसी बच्चे का जन्म-दिन है ?"

सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे, सोचने लगे। तभी एकाएक कलाकार को याद आ गया। वह बोल उठा, "महारानी जी, आज़ मेरी बेटी का भी जन्म-दिन है।"

रानी बोली, "कहाँ है तुम्हारी बेटी ?"

कलाकार चित्रा को खोज लाया।

चित्रा की आँखें अब भी गीली थीं। महारानी ने उसे गोद में उठा लिया। उसे प्यार किया। उसके आँसू पोंछे। फिर उसे मखमल की कुर्सी पर राजकुमारी के पास बैठा दिया। पहनने को नए वस्त्र दिए और अंत में जो गुड़िया राजकुमारी को भेंट में मिली थी, वह भी उसे दे दी। चित्रा खुशी से किलक उठी।

इतना ही नहीं, जाते समय महारानी उसे अपने साथ राजधानी ले गई। वह बहुत सुन्दर थी न ! पर उसे तो सब-कुछ सपना-सा लग रहा था। वह सोने के रथ में बैठी थी। रथ धूल उड़ाता चला जा रहा था। गाँव वाले जय-जयकार कर रहे थे। उसके पिता खड़े खुशी और अचरज से उसे जाते देख रहे थे।

राजधानी में राजकुमारी के साथ उसका जन्म-दिन भी बड़ी धूमधाम से मनाया गया। वह राजकुमारी की जुड़वाँ बहन जैसी लगती थी। वह जशन कई दिन चला। वह जैसे परीलोक की सैर करती रही। जब वह गाँव लौटी, तो उसके पास ढेरों उपहार थे। रंग-बिरंगे कपड़े, खिलौने और दूसरी अनगिनत चीजें। एक बार तो उसका कलाकार पिता भी उसे पहचान न पाया। वह बदल भी तो बहुत गई थी। चकाचौंध ने उसकी आँखों के रंग बदल दिए थे।

गाँव-भर के बच्चे उससे मिलने आए। उनमें बहुत सी उसकी

सहेलियाँ भी थीं, पर उसने किसी की ओर देखा तक नहीं। वे भी उसके पास नहीं आए। दूर से उसे देखते रहे और वह बढ़िया-बढ़िया खिलौनों से खेलती रही। जो उसकी बहुत प्यारी सहेलियाँ थीं, वे दरवाजे तक आईं, पर चकाचौंध के कारण पास आने का साहस न कर सकीं। वे लौट गईं कि कहीं कुछ मैला न हो जाए ! उसने भी तो उन्हें नहीं पुकारा था।

वे उस दिन लौटीं, तो फिर कभी नहीं आईं। कोई भी कभी नहीं आया। चित्रा कई दिन तक अकेली ही खेलती रही, पर कब तक खेलती ? आखिर उसे लगा, कोई उसके पास क्यों नहीं आता ? उन्हें आना चाहिए। वह अकेली कैसे खेल सकती है। खेलते-खेलते उसका मन भी ऊबने लगा था।

बस वह बाहर निकली। धूप में उसके सुन्दर कपड़े चमचम कर [illegible] थे। उसने देखा, दूर उसकी सहेलियाँ झूला झूल रही हैं। वह उधर [illegible] चली, पर यह क्या ! उसे आते देखकर उसकी सहेलियाँ भाग गईं। [illegible] खाली था और उसकी आँखों में आँसू थे। वह उदास-उदास लौट [illegible]। उस रात वह सो भी न सकी। उसने तय किया, वह सुबह उठकर [illegible] सहेलियों के घर जाएगी और पूछेगी कि वे उसके पास क्यों [illegible] आतीं ?

वह सुबह उठी। बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहने और चल पड़ी सहेलियों [illegible]। पर यह क्या ! उसे देखकर सब दूर भाग गईं। उसे एकाएक [illegible] आ गया, पर कोई उसके आँसू पोंछने नहीं आया। उसका दिल [illegible]। वह घर लौट आई। उसने अपने कपड़े उतार फेंके। उसने [illegible] भी फेंक दिए। वह देर तक खाट पर पड़ी रोती रही। रोती-रोती [illegible]। उसके पिता ने देखा, यह नींद में बार-बार बड़बड़ा उठती [illegible] मेरे साथ क्यों नहीं खेलतीं ? मुझे देखकर दूर क्यों भाग जाती [illegible]

[illegible] सब कुछ समझता था। उसने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उसे

सहलाता रहा, पुचकारता रहा और वह सुबकती रही...।

सुबह हुई तो वह बिलकुल शान्त थी। उसने अपने पुराने कपड़े पहने। वह बाहर आ गई। उसके गालों पर आँसुओं के निशान थे, पर आँखों में वही पुरानी मुस्कान थी। उसे देखते ही उसकी सहेलियाँ दौड़ती हुई उसके पास आईं और गले से लिपट गईं। देखते-देखते गाँव के बच्चों ने उसे घेर लिया। वह खुशी के मारे बोल न सकी। कुछ देर बाद उसने पूछा, "तुम लोग कहाँ थे ? मेरे पास क्यों नहीं आते थे ?"

वे बोले, "हम तो यहीं थे। तुम्हीं न जाने कहाँ खो गई थीं !"

"हमें तुम्हारे पास आते डर लगता था। आँखें चौंधिया जाती थीं।"

"हाँ-हाँ, हमारी गुड़िया कहीं खो गई थी और उसके स्थान पर एक सजी-धजी जादूगरनी आ गई थी।

सुनकर चित्रा खूब हँसी। सहेलियों को भी हँसी आ गई, लेकिन वह सब कुछ समझ गई थी कि कौन किससे और क्यों दूर हो गया था ! वह घर लौटी, तो उसने अपने सुन्दर-सुन्दर राजसी वस्त्र और उपहार एक गठरी में बाँधे और अपने पिता से कहा, "बाबा, आप इन्हें महारानी के पास वापस भेज दें। मुझे ये सब नहीं चाहिए।"

कलाकार पिता ने अपनी बेटी की ओर देखा और मुस्कराया। उसने कुछ जवाब नहीं दिया। वह सब कुछ जानता था। उस दिन उसकी गुड़िया-सी प्यारी बेटी उसे बहुत ही सुन्दर लग रही थी, परियों से भी सुन्दर।

दादी का मोती

मोती एक शिकारी कुत्ता था। पतला-दुबला, लम्बा, देखने में ज़रा भी खूबसूरत नहीं लगता था। पर उसकी आँखें बड़ी थीं। हमेशा प्यार से चमकती रहती थीं। दादी को वह बहुत प्यार करता था। दादी भी उसे बहुत चाहती थी।

दादी गाँव में रहती थी। परिवार बड़ा था। मकान भी बहुत बड़ा था और तुम जानो, गाँव में उन दिनों डाकू भी खूब आते थे। रात को अक्सर कहीं-न-कहीं डाका पड़ ही जाता था। इसीलिए लोग कुत्ते पालते थे। शिकारी कुत्ता डाकुओं को देखते ही पहचान लेता था। फिर तो वह खतरनाक हो उठता था। उसके हमले से बचना कोई मामूली बात नहीं थी।

इसीलिए मोती की बहुत पूछ होती थी। वह सबका प्यारा था। पर घर के किसी आदमी पर कभी हमला नहीं करता था। प्यार इतना करता कि लोग परेशान हो जाते।

वह गाँव, गंगा नदी से कुछ ही दूर था। कार्तिक के महीने में वहाँ बड़ा मेला लगता था। दादी हर साल उस मेले में हम सब बच्चों को भी लेकर जाती थी। उनकी रखवाली के लिए मोती भी जाता था। बच्चों को वह खूब पहचानता था। उनका दोस्त जो बन गया था।

एक बार ऐसा हुआ कि मोती उस मेले में गायब हो गया। बहुत ढूँढा, लेकिन कहीं पता नहीं लगा। किसी ने कहा कि उस पार चला गया है, उसने उसे नदी में घुसते देखा था। मेला खत्म हो गया, लेकिन

मोती नहीं आया। समझ लिया कि कोई उसे पकड़ ले गया है या वह नदी में डूब गया है। दादी का बुरा हाल था। सभी बहुत दुखी थे, लेकिन दादी के दुःख की मत पूछो। रोते-रोते उसकी आँखें लाल हो गईं।

सब लोग लौट आए। रुकते भी कब तक ! फिर बहुत दिन बीत गए। शायद तीन महीने बाद की बात है। जाड़े के दिन थे। अचानक आधी रात को दरवाजे पर खड़खड़ाहट शुरू हुई। हाँ, एक बात बताना तो मैं भूल ही गया था। मकान का दरवाजा बहुत बड़ा था और वह लकड़ी का नहीं था, टीन का था। इसलिए ज़रा भी आहट होती, तो बहुत शोर होता था। रात का सन्नाटा था। टीन के दरवाजे पर जो खड़खड़ाहट शुरू हुई, तो सब जाग उठे। समझ गए कि डाकू आ गए हैं।

सब डर गए, लेकिन यह क्या ! खड़खड़ाहट हुए जा रही है, हुए जा रही है, रुकती ही नहीं। कभी कम, कभी तेज। डाकू तो ऐसा नहीं कर सकते। वे तो एकदम दरवाजा तोड़ देते हैं। कौन है यह ? आदमी है, तो आवाज क्यों नहीं देता ?

तभी दादी एकदम चिल्ला पड़ी, "मेरा मोती आया।" सबने दादी की ओर देखा। उसकी आँखों में आँसू थे, लेकिन भला मोती कहाँ से आता ? वह दरवाजा कैसे खड़खड़ाएगा ? लेकिन दादी ने तुरन्त लालटेन उठाई और दरवाजा खोलने के लिए चल पड़ी। किसी ने उन्हें रोकना भी चाहा लेकिन वह नहीं रुकी। अब तो सबको ही पीछे-पीछे चलना पड़ा। भला उसे अकेला कैसे जाने देते। डाकू हुए तो !

बस आगे-आगे हाथ में लालटेन लिये दादी थी और पीछे थे कोई पन्द्रह-बीस स्त्री-पुरुष हाथों में लाठियाँ लिये हुए। एक-दो के पास छुरे भी थे। पर डर सब रहे थे। जैसे-जैसे दरवाजे के पास आ रहे थे, एक और आवाज उनके कानों में पड़ रही थी। वह मोती की आवाज थी। हाँ, हाँ, यह मोती ही है।

तभी किसी ने तेजी से आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। सचमुच वह मोती था। दरवाजा खुलते ही वह तीर की तरह लपका और दादी से आ चिपटा। वह पागलों की तरह कभी इस कंधे पर झपटता, कभी उस कंधे पर चढ़ता, कभी मुँह चूमता और कभी अपना सिर उनकी गोद में रख देता। और दादी थी कि रोए जा रही थी। बोल रही थी, "मेरा मोती, मेरा बेटा मोती, तू कहाँ गया था रे ? मैं तुझे रोज याद करती थी और जानती थी कि तू एक दिन आएगा।"

मोती केवल दादी से ही नहीं मिला, वह घर के हर आदमी के पास गया। उनके पास भी गया जो अभी तक सोए पड़े थे। सबके साथ उसने वैसा ही प्यार दिखाया। वह रात कब बीती, कब सवेरा हुआ, किसी को पता नहीं चला। लेकिन यह बात सभी जानते हैं कि अगले दिन दादी ने देवी के मंदिर में प्रसाद चढ़ाने के बाद सबको दो-दो पेड़े दिए थे। पूरे एक हफ्ते तक मोती की जो आवभगत हुई थी, उसकी चर्चा तो बच्चे बड़े हो जाने पर भी किया करते थे।

लेकिन यही मोती एक दिन पागल हो गया। गाँव में डाकू आते थे तो गीदड़ भी आते थे। मोती अक्सर उन गीदड़ों को मार भगाता था। कभी-कभी गीदड़ भी उसे काट लेते थे। एक दिन उन गीदड़ों में शायद कोई पागल गीदड़ भी आ गया था। उसी ने मोती को काट लिया और मोती पागल हो गया। उसके मुँह से बराबर राल टपकने लगी। उसकी आँखों का रंग बदलने लगा, लेकिन उसका प्यार अब भी कम नहीं हुआ था। अब लोग उससे डरते थे। दादी भी डरती थी। रोती थी। जिसे वह इतना प्यार करती थी, उसे अब गोद में नहीं ले सकती। मोती ने अभी तक किसी को काटा नहीं था। लेकिन काट जा सकता था। पागल कुत्ते चुपचाप काट लेते हैं। भौंकते तक नहीं।

मोती ने किसी को काट लिया तो ! पागल कुत्तों के काटने का उन दिनों कोई इलाज भी नहीं था। इसीलिए लोगों ने कहा, "मोती को मार डालो।" कैसी बुरी सलाह थी। दादी रोने लगी। सब लोगों

के दिल भर आए, लेकिन और कोई रास्ता भी तो नहीं था। मोती को मरना ही होगा।

फिर भी दो-तीन दिन बीत गए। इसी बीच में क्या हुआ कि घर का एक छोटा बच्चा अकेला सड़क पर निकल आया। वह धीरे-धीरे बाजार की ओर चल पड़ा। शाम का वक्त था। बैलगाड़ियाँ आ-जा रही थीं। एकाएक एक गाड़ी के बैल भड़क उठे। वे तेजी से दौड़ने लगे। उनके ठीक सामने ही वह बच्चा चल रहा था। लोगों की निगाह उस पर पड़ी। वे चिल्लाए, ''बच्चे को बचाओ, बच्चे को बचाओ।''

दौड़ते बैलों को रोकना आसान काम नहीं था। एकाएक कोई आदमी सामने नहीं आया। लेकिन मोती यह सब देख रहा था। वह तेजी से झपटा। पहले जब कभी ऐसा होता था, तो मुँह से कपड़ा पकड़कर खींच लेता था और बच्चे को सड़क से बाहर ले आता था, लेकिन अब तो वह पागल था। देखने वाले डर गए। कहीं उसके दाँत बच्चे के बदन में गड़ गए तो।

लेकिन हुआ क्या ? मोती तेजी से झपटा और उसने अपनी पीठ से धक्के दे देकर, बालक को सड़क से बाहर धकेल दिया। उसे मुँह से नहीं पकड़ा।

लोगों ने यह सब देखा, तो अचरज से दाँतों तले अँगुली दबा ली। सब कहने लगे, ''इतना समझदार कुत्ता ! बीमार है, फिर भी बच्चे को बचा लिया।''

यह तस्वीर किसकी है ?

एक लड़की थी। नाम था उसका नीना। वह स्कूल पढ़ने जाती थी। कुछ विषयों में वह बहुत अच्छी थी, कुछ में साधारण, लेकिन गणित में वह बहुत कमजोर थी। आसान से आसान सवाल भी वह नहीं कर सकती थी। हमेशा उसकी रिपोर्ट खराब रहती थी।

ऐसे ही एक अवसर पर जब वह स्कूल से लौटी तो बहुत उदास थी। उसके पिता ने उसे देखा और एकदम कहा, क्या बात है ? क्या आज भी गणित में खराब नम्बर मिले हैं।

नीना ने डरते-डरते उत्तर दिया, जी हाँ, डैडी।

और वह डाँट खाने तथा पिटने को तैयार हो गई। हमेशा ऐसा ही होता था। उसे खराब नम्बर मिलते थे और उसके पिता उसे पीटते थे। जब कभी वे उसे हिसाब समझाने के लिए बैठते तब तो बस उसकी मुसीबत आ जाती थी। पिटते-पिटते बेचारी अधमरी हो जाती। और जो कुछ भी, थोड़ा-बहुत, उसकी समझ में आता था, वह भी भूल जाती।

उस दिन भी यही हुआ। डाँट-डपट के बाद पिता ने कहा, "अच्छा ! एक सवाल देता हूँ। अगर तुमने उसका ठीक जवाब दे दिया तो ठीक है। नहीं दिया तो कड़ी सजा मिलेगी।"

सवाल ऐसे था—एक आदमी के पास पाँच घोड़े और दस गधे हैं। उन सबकी कीमत पन्द्रह सौ रुपए है। अब बताओ एक घोड़े और एक गधे की कीमत क्या होगी जब कि सभी घोड़ों की कीमत सभी गधों के बराबर है।

यह सवाल बहुत आसान है। कुल कीमत को दो से भाग कर दो। एक भाग साढ़े सात सौ रुपए घोड़ों की कीमत। दूसरा भाग साढ़े सात सौ रुपए गधों की कीमत। घोड़े हैं पाँच। पाँच से साढ़े सात सौ को भाग दो। आए एक सौ पचास यानी एक घोड़े की कीमत एक सौ पचास रुपए। गधे हैं दस। दस से सात सौ पचास को भाग दो। आए पचहत्तर रुपए यानी एक गधे की कीमत हुई पचहत्तर रुपए।

लेकिन नीना की समझ में यह सवाल नहीं आया। बहुत देर तक सिर झुकाए हल करती रही, रोती रही पर सही हल नहीं मिला। सोचने लगी, मेरी समझ में कुछ नहीं आता। मैं क्या करूँ ? अच्छा थोड़ी देर आराम करती हूँ। और हाँ, क्यों न थोड़ी देर चित्र ही बनाए जाएँ।

नीना को सचमुच चित्र बनाने का बड़ा शौक था। नम्बर भी उसे बहुत अच्छे मिलते थे। बस उसने गणित की कापी उठाकर अलग रख दी और एक कागज पर पेंसिल से रेखाएँ बनाने लगी। पहले उसने एक बहुत सुन्दर सी चिड़िया बनाई। फिर कुछ फूल बनाए। उसके बाद उसने एक आदमी की तस्वीर बनाई। उसे देखकर वह स्वयं बड़े जोर से हँस पड़ी। उसकी वह हँसी उसकी माँ ने सुनी। डाँट पड़ने के कारण वह बहुत परेशान थी, लेकिन वह यह भी चाहती थी कि नीना हिसाब में होशियार हो जाए। आखिर वह हिसाब नहीं जानेगी तो आगे की पढ़ाई कैसे होगी ? कैसे वह डॉक्टर या इंजीनियर बनेगी ? लेकिन अब जब उसने नीना की हँसी सुनी तो वह चौंक पड़ी। वह जल्दी-जल्दी उसके पास आई। उसे आते देखकर नीना ने झटपट वह कागज छिपा दिया। माँ ने पूछा, सवाल कर लिया ?

नीना ने उत्तर दिया, मेरी समझ में नहीं आता।

माँ आखिर माँ थी। नीना को बहुत प्यार करती थी। वह उसके पास बैठ गई और उसे बताने लगी कि वह सवाल कैसे हल करना चाहिए। वह बोलती गई और नीना लिखती गई। अन्त में माँ ने कहा, बेटी, अच्छी तरह से समझ लो। मैं तुम्हारे सवाल कब तक हल करती



रहूँगी ? तुम्हें अपने आप अपना काम करना चाहिए। अच्छा, वह कागज तो दिखाओ जो तुमने वहाँ छिपा दिया।

नीना एकदम घबरा गई। उसने उस कागज को और भी छिपाने की कोशिश की, लेकिन वह माँ की नजर से नहीं बच सका। उसने उस कागज को देखा। धीरे-धीरे उसके चेहरे पर मुस्कराहट फैलती गई। बोली, ये तुमने बनाए हैं ? तुम तो अच्छे खासे चित्र बना लेती हो। और यह बड़ी-बड़ी आँखों वाला आदमी कौन है ? क्या यह तेरे डैडी ही नहीं हैं ?

नीना ने शर्म से सिर झुका लिया। माँ फिर मुस्कराई। बोली, "इसमें शरमाने की क्या बात है ? तुम्हें शौक है तो तुम चित्र बना सकती हो। लेकिन तुम्हें सवाल समझने की भी कोशिश करनी चाहिए।"

बात यहीं खत्म नहीं हुई। नीना चुपचाप चित्र बनाती रही और सवाल भी हल करती रही, लेकिन सवाल थे कि उसकी समझ में कम ही आते थे। हाँ, चित्रों की भाषा वह बहुत अच्छी तरह समझ लेती थी। उसकी सहेलियाँ उसका मजाक उड़ातीं। स्कूल में बहन जी उसे चिढ़ातीं। घर पर डैडी उसे डाँटते। छोटे भाई-बहन भी उसकी खिल्ली उड़ाने से नहीं चूकते थे। वह भी बहुत दुखी होती, लेकिन जैसे ही वह कागज पर पेंसिल से रेखाएँ खींचने लगती, वह सब बातें भूल जाती और उन रेखाओं में तरह-तरह की तस्वीर चमक उठतीं। वह उन्हें किसी को दिखाती नहीं थी। बस उसकी माँ ही इस बात को जानती थी। एक दिन उसने बड़े प्यार से नीना से कहा, "नीना बेटी, एक हफ्ते बाद चित्र बनाने की प्रतियोगिता होगी। तुम उस प्रतियोगिता में भाग क्यों नहीं लेती ?"

नीना यह सुनकर बहुत खुश हुई, लेकिन वह डर भी रही थी। उसने कहा, "डैडी नहीं जाने देंगे, मम्मी।"

माँ बोली, "अभी डैडी से कहने की जरूरत नहीं है। तुम मेरे साथ चलना।"

और सचमुच नीना ने उस प्रतियोगिता में भाग लिया। कई घंटे तक वह मोटे से सफेद कागज पर रंगों से रेखाएँ खींचती रही। उनमें रंग भरती रही। जब वह लौटी तो बहुत खुश थी। लेकिन इस खुशी की बात उसने किसी को भी नहीं बताई। क्योंकि वह डरती थी।

इसी तरह कई महीने बीत गए। वह सवाल हल करती रही। डाँट खाती रही। फिर रेखाएँ खींचती रही।

फिर एक दिन एक मोटा-सा लिफाफा नीना के नाम आया। उसके डैडी ने उसे खोलकर पढ़ा। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, तीन बार पढ़ा। उन्हें विश्वास ही नहीं आ रहा था। पत्र में लिखा था कि प्रतियोगिता में सबसे सुन्दर चित्र बनाने के लिए दस बच्चों को पारितोषिक दिया जाएगा। नीना उनमें दूसरे नम्बर पर आई है। आगामी 15 दिसम्बर को स्वयं प्रधानमंत्री पारितोषिक बाँटेंगे। उस दिन नीना को अपने माता-पिता सहित ठीक समय पर पहुँच जाना चाहिए।

उसके डैडी ने एक बार फिर बहुत अच्छी तरह उस पत्र को पढ़ा। फिर उनकी आँखों में आँसू तैर आए। उन्होंने नीना को बुलाकर उसे छाती से लगा लिया। उसकी पीठ ठोंकी और मन-ही-मन उससे माफी भी माँग ली। फिर चिल्लाकर उसकी माँ से कहा, अरे सुनती हो, कहाँ हो तुम। यहाँ आकर देखो हमारी नीना चित्रकार बन गई है।

माँ दौड़ी-दौड़ी आई और हँसती हुई बोली, मुझे सब मालूम है। वह तो कभी की चित्रकार बन चुकी है। जरा देखो तो यह किसकी तस्वीर है ?

और उसने वह कागज जो पहले दिन नीना की मेज से उठाया था उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने उसे देखा। यह तो एक आदमी की तस्वीर है। क्या इसकी शक्ल मुझसे नहीं मिलती ? वह सब कुछ समझ गए। लेकिन उन्हें गुस्सा नहीं आया। मुस्कराकर बोले, क्या प्रतियोगिता में भी मेरा ही चित्र बनाया है ?

नीना ने शरमाते हुए जवाब दिया, "आपका भी, मम्मी का भी,

अपना भी।''

उन्होंने एकदम कहा, ''तब मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा।''

लेकिन वह गए। और बड़े गर्व के साथ गए। आज भी उनके कमरे में वह चित्र टँगा हुआ है, जिसमें प्रधानमंत्री नीना को पुरस्कार देकर उसकी पीठ थपथपा रहे हैं और सब लोग तालियाँ बजा रहे हैं। डैडी भी, मम्मी भी।

और सबसे अच्छी बात यह हुई है कि अब गणित के सवाल भी नीना की समझ में आने लगे हैं।

□ □ □

बाल-साहित्य

देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

- पड़ोसी देशों की लोककथाएं
- पंजाब की लोककथाएं
- हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
- हिमाचल की लोककथाएं
- राजस्थान की लोककथाएं
- मध्यप्रदेश की लोककथाएं
- उत्तर प्रदेश की लोककथाएं
- जापान की लोककथाएं
- अफ्रीका की लोककथाएं
- गुजरात की लोककथाएं
- बिहार की लोककथाएं
- असम की लोककथाएं
- बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
- केरल की लोककथाएं

प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

- बूढ़ी काकी
- बड़े घर की बेटी
- सुजान भगत
- परीक्षा
- शतरंज के खिलाड़ी
- दो बैलों की कथा
- मां की ममता
- शिकारी राजकुमार
- गुल्ली-डण्डा
- रानी सारंधा
- नमक का दरोग़ा
- रामलीला
- पंच परमेश्वर
- मन्दिर
- ईद का त्यौहार
- सब से बड़ा तीर्थ
- कुत्ते की कहानी
- मेरी कहानी
- रामकथा
- जंगल की कहानियां

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

- भोला राजा
- काबुलीवाला
- पारसमणि
- मास्टरजी
- तोते की कहानी
- राजा का न्याय

राजपाल

ISBN 81-7028-350-7
9788170283508